कबीर

(साखी और दोहे)

१.गुरुदेव कौ अंग

सतगुर सवाँन को सगा, सोधी सईं न दाति ।
हरिजी सवाँन को हितू, हरिजन सईं न जाति ॥१॥

बलिहारी गुर आपणैं, द्यौं हाड़ी कै बार ।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार ॥२॥

सतगुर की माहिमा अनँत, अनँत किया उपकार ।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार ॥३॥

राम नाम के पटतरे , देबे कौ कछु नाहिं ।
क्या ले गुर संतोषिए , हौंस रही मन मांहि ॥४॥

सतगुर के सदकै करुँ, दिल अपणी का साछ ।
कलियुग हम स्यूँ लड़ि पड़या, महकम मेरा बाछ ॥५॥

सतगुर लई कमाँण करि, बाँहण लागा तीर ।
एक जु बाह्या प्रीति सूँ , भीतरि रह्या सरीर ॥६॥

सतगुर साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक ।
लागत ही में मिलि गया, पड़या कलेजै छेक ॥७॥

सतगुर मार्‌या बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि ।
अंगि उघाड़ै लागिया, गई दवा सूँ फूंटि ॥८॥

हँसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि ।
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियार ॥९॥

गूँगा हूआ बावला, बहरा हूआ कान ।
पाऊँ थैं पंगुल भया, सतगुर मार्‌या बाण ॥१०॥

पीछैं लागा जाइ था, लोक वेद के साथि ।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि ॥११॥

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट ।
पूरा किया बिसाहुणाँ, बहुरि न आँवौं हट्ट ॥१२॥

ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जिनि बीसरिं जाइ ।
जब गोबिंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ ॥१३॥

कबीर गुर गरबा मिल्या, रलि गया आटैं लूँण ।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे कौण ॥१४॥

जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध ।
अंधा अंधा ठेलिया, दून्यूँ कूप पड़ंत ॥१५॥

नाँ गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव ।
दुन्यूँ बूड़े धार मै, चढ़ि पाथर की नाव ॥१६॥

चौसठि दीवा जोइ करि , चौदह चंदा माँहि ।
तिहिं घरि किसकौ चानिणौं, जिहि घरि गोबिंद नाँहि ॥१७॥

निस अँधियारी कारणौं, चौरासी लख चंद ।
अति आतुर ऊदै किया, तऊ दिष्टि नहिं मंद ॥१८॥

भली भई जु गुर मिल्या, नहीं तर होती हाँणि ।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यूँ, पड़ता पूरी जाँणिं ॥१९॥

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पड़ंत ।
कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक आध उबरंत ॥२०॥

सतगुर बपुरा क्या करै, जे सिषही माँहै चूक ।
भावै त्यूँ प्रमोधि ले, ज्यूँ बंसि बजाई फूक ॥२१॥

संसै खाया सकल जुग, संसा किनहुँ न खद्ध ।
जे बेधे गुर अष्पिरां, तिनि संसा चुणि चुणि खद्ध ॥२२॥

चेतनि चौकी बैसि करि , सतगुर दीन्हाँ धीर ।
निरभै होइ निसंक भजि, केवल कहै कबीर ॥२३॥

सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी भोल ।
पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल ॥२४॥

बूड़े पर ऊबरे, गुर की लहरि चमंकि ।
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि ॥२५॥

गुरू गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार ।
आपा मेट जीवत मरै, तो पावै करतार ॥२६॥

कबीर सतगुर नाँ मिल्या, रहि अधूरी सीष ।
स्वांग जती का पहरि करि, घरि घरि माँगे भीष ॥२७॥

सतगुर साँचा सूरिवाँ, तातै लोहिं लुहार ।
कसणो दे कंचन किया, ताई लिया ततसार ॥२८॥

थापणि पाई थिति भई, सतगुर दीन्हीं धीर ।
कबीर हीरा बणजिया, मानसरोवर तीर ॥२९॥

निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर ।
निपजी मैं साझी घणाँ, बांटै नहीं कबीर ॥३०॥

चौपड़ि माँडी चौहटैं, अरध उरध बाजार ।
कहै कबीरा राम जन, खेलौ संत विचार ॥३१॥

पासा पकड़या प्रेम का, सारी किया सरीर ।
सतगुर दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥३२॥

सतगुर हम सूँ रीझि करि , एक कह्या प्रसंग ।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ॥३३॥

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आइ ।
अंतरि भीगी आत्माँ, हरी भई बनराइ ॥३४॥

पूरे सूँ परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि ।
निर्मल कीन्ही आत्माँ ताथैं, सदा हजूरि ॥३५॥

कबीर सब जग यों भ्रम्या फिरै ज्यूँ रामे का रोज ।
सतगुर थैं सोधी भई, तब पाया हरि का षोज ॥३६॥

कबीर सतगुर ना मिल्या, सुणी अधूरी सीष ।
मुँड मुँडावै मुकति कूँ, चालि न सकई बीष ॥३७॥

कबीर हीरा बणजिया हिरदे उकठी खाणि ।
पारब्रह्म क्रिपा करी सतगुर भये सुजाँण ॥३८॥

२.सुमिरण कौ अंग

कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ ।
राम कहें भला होइगा, नहिं तर भला न होइ ॥३९॥

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस ।
राम नांव सतसार है, सब काहू उपदेस ॥४०॥

तत तिलक तिहूँ लोक मैं, राम नाँव निज सार ।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार ॥४१॥

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार ।
मनसा बाचा क्रमनाँ, कबीर सुमिरण सार ॥४२॥

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल ।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौं काल ॥४३॥

च्यंता तौ हरि नाँव की, और न चिंता दास ।
जे कुछ चितवैं राम बिन, सोइ काल कौ पास ॥४४॥

पंच सँगी पिव पिव करै, छटा जू सुमिरे मंन ।
मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आहि ॥४५॥

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आहि ।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवाबौं काहि ॥४६॥

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ मैं रही न हूँ ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ ॥४७॥

कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति ।
तेल घट्या बाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति ॥४८॥

कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि ।
एक दिनाँ भी सोवणाँ, लंबे पाँव पसारि ॥४९॥

कबीर सूता क्या करैं, काहे न देखै जागि ।
जाका सँग तैं बीछुड़्या, ताही के सँग लागि ॥५०॥

कबीर सूता क्या करै, उठि न रोवै दुक्ख ।
जाका बासा गोर मैं, सो क्यूँ सोवै दुक्ख ॥५१॥

कबीर सूता क्या करै, गुण गोविंद के गाइ ।
तेरे सिर परि जम खड़ा, खरच कदे का खाइ ॥५२॥

कबीर सूता क्या करै, सूताँ होइ अकाज ।
ब्रह्मा का आसण खिस्या, सुणत काल की गाज ॥५३॥

केसौ कहि कहि कूकिये, नाँ सोइयै असरार ।
राति दिवस कै कूकणौं, (मत) कबहूँ लगै पुकार ॥५४॥

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहीं राम ।
ते नर इस संसार में, उपजि षये बेकाम ॥५५॥

कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया साव ।
सूने घर पाहुणाँ, ज्यूँ आया त्यूँ जाव ॥५६॥

पहली बुरा कमाइ करि, बाँधी विष की पोट ।
कोटि करम फिल पलक मैं, (जब) आया हरि की वोट ॥५७॥

कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आवैं नाउँ ।
अनेक जुग जे पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाउँ ॥५८॥

जिहि हरि जैसा जाणियाँ, तिन कूँ तैसा लाभ ।
ओसों प्यास न भाजई, जब लग धसै न आभ ॥५९॥

राम पियारा छाड़ि करि, करै आन का जाप ।
बेस्वाँ केरा पूत ज्यूँ, कहै कौन सूँ बाप ॥६०॥

कबीर आपण राम कहि, औराँ राम कहाइ ।
जिहि मुखि राम न ऊचरे, तिहि मुख फेरि कहाइ ॥६१॥

जैसे माया मन रमै, यूँ जे राम रमाइ ।
(तौ) तारा मंडल छाँड़ि करि,जहाँ के सो तहाँ जाइ ॥६२॥

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम है लूटि ।
पीछैं ही पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि ॥६३॥

लुटि सकै तौ लुटियौ, राम नाम भंडार ।
काल कंठ तैं गहैगा, रूँधै दसूँ दुवार ॥६४॥

लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु भार ।
कहौ संतौ क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरिदीदार ॥६५॥

गुण गायें गुण ना कटै , रटै न राम बियोग ।
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यूँ पावै दुर्लभ जोग ॥६६॥

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरतां हरि नाम ।
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरूँ त नाहीं ठाम ॥६७॥

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत ।
हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत ॥६८॥

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ ।
फूटा नग ज्यूँ जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ ॥६९॥

कबीर चित्त चमंकिया, चहुँ दिस लागी लाइ ।
हरि सुमिरण हथूं घड़ा, बेगे लेहु बुझाइ ॥७०॥

३. बिरह कौ अंग

रात्यूँ रूँनी बिरहनीं, ज्यूँ बंचौ कूँ कूंज ।
कबीर अंतर प्रजल्या , प्रगट्या बिरहा पुंज ॥७१॥

अंबर कुँजाँ कुरलियाँ, गरिज भरे सब ताल ।
जिनि थैं गोबिंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल ॥७२॥

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिलि परभाति ।
जे जन बिछुटे राम सूँ , ते दिन मिले न राति ॥७३॥

बासुरि सुख नाँ रैण सुख, ना सुख सुपनै माँह ।
कबीर बिछुट्या राम सूँ, नाँ सुख धूप न छाँह ॥७४॥

बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ ।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैगे आइ ॥७५॥

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम ।
जिव तरसै तुझ मिलन कूँ मनि नाहों विश्राम ॥७६॥

बिरहिन ऊठै भी पड़े, दरसन कारनि राम ।
मूवाँ पीछै देहुगे, सो दरसन किहिं काम ॥७७॥

मूवाँ पीछें जिनि मिलै, कहै कबीरा राम ।
पाथर घाटा लोह सब,(तब) पारस कौंणे काम ॥७८॥

अंदेसड़ा न भाजिसी , संदेसौ कहियाँ ।
के हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पासि गयां ॥७९॥

आइ न सकौं तुझ पैं, सकूँ न तुझ बुझाइ ।
जियरा यौही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ ॥८०॥

यहु तन जालौं मसि करूँ, ज्यूं धूवाँ जाइ सरग्गि ।
मति वै राम दया करैं, बरसि बुझावै अग्गि ॥८१॥

यहु तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ ।
लेखणिं करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाउँ ॥८२॥

कबीर पीर पिरावनीं, पंजर पीड़ न जाइ।
एक ज पीड़ परीति की, रही कलेजा छाइ ॥८३॥

चोट सताड़ी बिरह की, सब तन जरजर होइ।
मारणहारा जाँणिहै, कै जहिं लागी सोइ ॥८४॥

कर कमाण सर साँधि करि, खैंचि जु मार्‌या माँहि।
भीतरि भिद्या सुमार ह्वै, जीवै कि जीवै नांहि ॥८५॥

जबहूँ मार्‌या खैंचि करि, तब मैं पाई जाँणि।
लागी चोट मरम्म की, गई कलेजा जाँणि ॥८६॥

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नहीं ॥८७॥

बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ ।
राम बियोगी ना जिवै, जिवै त बीरा होइ ॥८८॥

बिरह भुवंगम पैसि करि, किया कलेजै घाव।
साधू अंग न मोहड़ी, ज्यूँ भावै त्यूँ खाव ॥८९॥

सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै, कै साई कै चित्त ॥९०॥

बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान।
जिह घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान ॥९१॥

अंषड़ियाँ झाई पड़ी, पंथ निहारि निहारि ।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम राम पुकरि पुकरि ॥९२॥

इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव ।
लोही सींचौं तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव ॥९३॥

नैना नीझर लाइया , रहट बहै निस जाम ।
पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौं, कबरू मिलहुगे राम ॥९४॥

अंषड़ियाँ प्रेम कसाइयाँ, लोग जाँणै दुखड़ियाँ ।
साँई अपणै कारणै, रोइ रोइ रतड़ियाँ ॥९५॥

सोई आँसू सजणाँ, सोई लोक बिड़ाँहि ।
जे लोइण लोंहीं चुवै, तौ जाँणौं हेत हिंयांहि ॥९६॥

कबीर हसणाँ दूरि करि, करि रोवण सौं चित्त ।
बिन रोवाँ क्यूँ पाइये, प्रेम पियारा मित्त ॥९७॥

जौ रोऊं तो बल घटै, हँसौं तौ राम रिसाइ ।
मनही माँहि बिसूरणाँ, ज्यूँ घुँण काठहिं खाइ ॥९८॥

हंसि हंसि कंत न पाइए , जिनि पाया तिनि रोइ ।
जो हाँसेंही हरि मिलै, तौ नहिं दहागनि कोइ ॥९९॥

हाँसी खेलौं हरि मिलै, कौण सहे षरसान ।
काम क्रोध त्रिष्णाँ तजै, ताहि मिलैं भगवान ॥१००॥

पूत पियारो पिता कौं, गौहनि लागा धाइ ।
लोभ मिठाई हाथ दे, आपण गया भुलाइ ॥१०१॥

डारी खाँड़ पटकि करि, अंतरि रोस उपाइ ।
रोवत रोवत मिलि गया, पिता पियारे जाइ ॥१०२॥

नैना अंतरि आचरूँ, निस दिन निरषौं तोहि ।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहिं ॥१०३॥

कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ ।
बिरहणि पिंव पावै नही, जियरा तलपै माइ ॥१०४॥

कै बिरहनि कूँ मींच दे, कै आपा दिखलाइ ।
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाइ ॥१०५॥

विरहणि थी तौ क्यूँ रहीं, जली न पीव के नालि ।
रहु रहु मुगध गहेलड़ी, प्रेम न लाजूँ मारि ॥१०६॥

हौं बिरहा की लाकड़ी, समझि समझि धूँधाउँ ।
छूटि पड़ौं यों बिरह तें, जे सारीही जलि जाउँ ॥१०७॥

कबीर तन मन यौं जल्या, बिरह अगनि सुं लागि ।
मृतक पीड़ न जाँणई, जांणैगी यहु आगि ॥१०८॥

बिरह जलाई मैं जलौं, जलती जल हरि जाउँ ।
मो देख्याँ जल हरि जलै, संतौं कहाँ बुझाउँ ॥१०९॥

परबति परबति मैं फिर्‌या, नैन गंवाये रोइ ।
सो बूटी पाऊँ नहीं, जातैं जीवनि होइ ॥११०॥

फाड़ि फुटोला धज करौं, कामलड़ी पहिराउँ ।
जिहि जिहि भेषां हरि मिलै, सोइ सोइ भेष कराउँ ॥१११॥

नैन हमारे जलि गये, छिन छिन लोड़ै तुझ ।
नां तूं मिलै न मैं खुसी, ऐसी बेदन मुझ ॥११२॥

भेला पाया श्रम सों, भौसागर के माँह ।
जे छड़ौं तौ डूबिहौ, गहौं त डसिये बाँह ॥११३॥

रैंणा दूर बिछोहिया, रहु रे संषम झूरि ।
देवलि देवलि धाहड़ी, देसी ऊगे सूरि ॥११४॥

सुखिया सब संसार है, खाये अरू सोवै ।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरू रोवै ॥११५॥

मो चित तिलाँ न बीसरौ, तुम्ह हरि दूरि थंयाह ।
इहि अंगि औलू भाइ जिसी, जदि तदि तुम्ह म्यलियांह ॥११६॥

४. ग्यान बिरह कौ अंग

दीपक पावक आंणिया, तेल भी आंण्या संग ।
तीन्यूं मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ैं पतंग ॥११७॥

मार्‌या है जे मरेगा, बिन सर थोथी भालि ।
पड्‌या पुकारे ब्रिछ तरि, आजि मरै कै काल्हि ॥११८॥

हिरदा भीतरि दौ बलै, धूंवां प्रगट न होइ ।
जाकै लागी सो लखै, कै जिहिं लाई सोइ ॥११९॥

झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि ।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूति ॥१२०॥

अगनि जु लागि नीर मैं, कंदू जलिया झारि ।
उतर दषिण के पंडिता, रहे बिचारि बिचारि ॥१२१॥

दौं लागी साइर जल्या, पंषी बैठे आइ ।
दाधी देह न पालवै, सतगुर गया लगाइ ॥१२२॥

गुर दाधा चेला जल्या, विरहा लागी आगि ।
तिणका बपुड़ा ऊबर्‌या, गलि पूरे कै लागि ॥१२३॥

आहेड़ी दौं लाइया, मृग पुकारे रोइ ।
जा बन में क्रीला करी, दाझत है बन सोइ ॥१२४॥

पाणीं मांहै प्रजली, भई अप्रबल आगि ।
बहती सलिता रहि गई, मंछ रहे जल त्यागि ॥१२५॥

समंदर लागी आगि, नदियां जलि कोयला भई ।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषाँ चढ़ि गई ॥१२६॥

बिरह जलाई मैं जलौं, मो बिरहिन कै दूष ।
छाँह न बैसौं डरपती, मति जलि ऊठै रूष ॥१२७॥

बिरहा कहै कबीर कौं, तू जनि छाँड़े मोहि ।
पारब्रह्म के तेज मैं, तहाँ ले राखौं तोहि ॥१२८॥

५. परचा कौ अंग

कबीर तेज अनंत का मानौं, ऊगी सूरज सेणि ।
पति सँगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि ॥१२९॥

कोतिग दीठा देह बिन, रवि ससि बिना उजास ।
साहिब सेवा मांहि है, बेपरवांही दास ॥१३०॥

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान ।
कहिये कुँ सोभा नहीं, देख्याही परवान ॥१३१॥

अगम आगोचर गमि नहीं, तहां जगमगै जोति ।
जहां कबीरा बंदिगी, (तहां) पाप पुन्य नहीं छोति ॥१३२॥

हदे छाड़ि बेहदि गया, हुवा निरंतर बास ।
कवल ज फूल्या फूल बिन, को निरषै निज दास ॥१३३॥

कबीर मन मधुकर भया, रह्या निरंतर बास ।
कवल ज फूल्या जलह बिन, को देखै निज दास ॥१३४॥

अंतरि कवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहां होइ ।
मन भवरा तहाँ लुबधिया, जांणैगा जन कोइ ॥१३५॥

सायर नाहीं सीप बिन, स्वांति बूँद भी नाहिं ।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिषर गढ़ माँहिं ॥१३६॥

घट माँहै औघट लह्या, औघट माँहैं घाट ।
कहि कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट ॥१३७॥

सूर समांणों चंद में, दहूँ किया घर एक ।
मनका च्यंता तब भया, कछू पूरबला लेख ॥१३८॥

हद छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान ।
मुनि जन महल न पावई, तहाँ किया विश्राम ॥१३९॥

देखौ कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख ।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख ॥१४०॥

पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत ।
संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत ॥१४१॥

प्यंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास ।
मुख कस्तूरी महमहीं, वाँणीं फूटी बास ॥१४२॥

मन लागा उनमन्न सौं , गगन पहुँचा जाइ ।
देख्या चंद्रबिहूँणाँ चाँदिणाँ, तहाँ अलख निरंजन राइ ॥१४३॥

मन लागा उनमन्न सौं, उनमन मनहि बिलग ।
लूँण बिलगा पाणियाँ, पाँणीं लूँणा बिलग ॥१४४॥

पाँणीं ही तें हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ ॥१४५॥

भली भई जु भैं पड़्या, गई दसा सब भूलि ।
पाला गलि पाँणी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि ॥१४६॥

चौहटै च्यंतामणि चढ़ी, हाडी मारत हाथि ।
मीराँ मुझसँ मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि ॥१४७॥

पंषि उडाणी गगन कूँ, प्यंड रह्या परदेस ।
पाँणी पीया चंच बिन, भूलि गया यहु देस ॥१४८॥

पंषि उड़ानीं गगन कूँ, उड़ी चढ़ी असमान ।
जिहिं सर मंडल भेदिया, सो सर लागा कान ॥१४९॥

सुरति समाँणो निरति मैं, निरति रही निरधार ।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार ॥१५०॥

सुरति समाँणी निरति मैं, अपजा माँहै जाप ।
लेख समाँणाँ अलेख मैं, यूँ आपा माँहै आप ॥१५१॥

आया था संसार में, देषण कौं बहु रूप ।
कहै कबीरा संत हौं, पड़ि गया नजरि अनूप ॥१५२॥

अंक भरे भरि भेटिया, मन मैं नाँहीं धीर ।
कहै कबीर ते क्यूँ मिलैं, जब लग दोइ सरीर ॥१५३॥

सचु पाया सुख ऊपनाँ अरु, दिल दरिया पूरि ।
सकल पाप सहजै गये, जब साँई मिल्या हजूरि ॥१५४॥

धरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तोया, नहीं तारा ।
तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर बिचारा ॥१५५॥

जा दिन कृतमनां हुता, होता हट न पट ।
हुता कबीरा राम जन, जिन देखै औघट घट ॥१५६॥

थिति पाई मन थिर भया, सतगुर करी सहाइ ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ ॥१५७॥

हरि संगति सीतल भया, मिटा मोह की ताप ।
निसबासुरि सुख निध्य लह्या, जब अंतरि प्रकट्या आप ॥१५८॥

तन भीतरि मन मानियाँ, बाहरि कहा न जाइ ।
ज्वाला तैं फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ ॥१५९॥

तत पाया तन बीसर्‌या, जब मुनि धरिया ध्यान ।
तपनि गई सीतल भया, जब सुनि किया असनान ॥१६०॥

जिनि पाया तिनि सू गह्या गया, रसनाँ लागी स्वादि ।
रतन निराला पाईया, जगत ढंढाल्या बादि ॥१६१॥

कबीर दिल स्याबति भया, पाया फल संम्रथ्थ ।
सायर माँहि ढंढोलताँ, हीरै पड़ि गया हथ्थ ॥१६२॥

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहि ।
सब अँधियारा मिट गया, जब दीपक देख्या माँहि ॥१६३॥

जा कारणि मैं ढूँढ़ता, सनमुख मिलिया आइ ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ ॥१६४॥

जा कारणि में जाइ था, सोई पाई ठौर ।
सोई फिरि आपणा भया, जासूँ कहता और ॥१६५॥

कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ ।
तेज पुंज पारस धणों, नैनूँ रहा समाइ ॥१६६॥

मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं ।
मुकताहल मुकता चुगैं अब उड़ि अनत न जाहिं ॥१६७॥

गगन गरिज अंमृत चवै, कदली कवल प्रकास ।
तहाँ कबीरा बंदिगी, कै कोई निज दास ॥१६८॥

नींव बिहूँणां देहुरा, देह बिहूँणाँ देव ।
कबीर तहाँ बिलंबिया, करे अलष की सेव ॥१६९॥

देवल माँहैं देहुरी, तिल जेहैं बिसतार ।
माँहैं पाती माँहि जल, माँहैं पूजणहार ॥१७०॥

कबीर कवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर ।
निस अंधियारी मिटि गई, बाजे अनहद तूर ॥१७१॥

अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान ।
अविगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान ॥१७२॥

आकासै मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि ।
ताका पाँणीं को हंसा पीवै, विरला आदि विचारि ॥१७३॥

सिव सकती दिसि कौंण जु जीवै, पछिम दिसा उठै धूरि ।
जल मैं स्यंध जु धर करै, मछली चढ़ै खजूरि ॥१७४॥

अंमृत बरिसै हीरा निपजै, घंटा पड़ै टकसाल ।
कबीर जुलाहा भया पारषू , अनभै उतरया पार ॥१७५॥

ममिता मेरा क्या करै, प्रेम उघाड़ीं पौलि ।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौड़ि ॥१७६॥

६. रस कौ अंग

कबीर हरि रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि ।
पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चढ़हिं चाकि ॥१७७॥

राम रसाइन प्रेम रस पीवत, अधिक रसाल ।
कबीर पीवण दुलभ है, माँगै सीस कलाल ॥१७८॥

कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ ।
सिर सौंपे सोई पिवै, नहीं तौ पिया न जाइ ॥१७९॥

हरि रस पीया जाँणिये, जे कबहुँ न जाइ खुमार ।
मैमंता घूँमत रहै, नाँहि तन की सार ॥१८०॥

मैमंता तिण नां चरै, सालै चिता सनेह ।
बारि जु बाँध्या प्रेम कै ,डारि रह्या सिरि षेह ॥१८१॥

मैमंता अविगत रता, अकलप आसा जीति ।
राम अमलि भाता रहै, जीवत मुकति अतीति ॥१८२॥

जिहि सर घड़ा न डूबता, अब मैं गल मलि मलि न्हाइ ।
देवल बूड़ा कलस सूँ, पंषि तिसाई जाइ ॥१८३॥

सबै रसाइण मैं किया, हरि सा और न कोइ ।
तिल इक घर मैं संचरे, तौ सब तन कंचन होइ ॥१८४॥

७. लाँबि कौ अंग

कया कमंडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर ।
तन मन जोबर भरि पिया, प्यास न मिटी सरीर ॥१८५॥

मन उलट्या दरिया मिल्या, लागा मलि मलि न्हांन ।
थाहत थाह न आवई, तूँ पूरा रहिमान ॥१८६॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ ।
बूँद समानी समंद मैं, सो कत हेरी जाइ ॥१८७॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ ।
समंद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्‌या जाइ ॥१८८॥

८. जर्णां कौ अंग

भारी कहौं तो बहु डरौं, हलका कहूँ तो झूठ ।
मैं का जाँणौं राम कूँ , नैनूँ कबहूँ न दीठ ॥१८९॥

दीठा है तो कस कहूँ, कह्या न को पतियाइ ।
हरि जैसा है तैसा रहौ, तूँ हरिषि–हरिषि गुण गाइ ॥१९०॥

ऐसा अद्‌भुत जिनि कथै, अद्‌भुत राखि लुकाइ ।
बेद कुरानों गमि नहीं कह्याँ न को पतियाइ ॥१९१॥

करता की गति अगम है, तूँ चलि अपणैं उनमान ।
धीरें धीरें पाव दे, पहुँचैंगे परवान ॥१९२॥

पहुँचैगे तब कहैंगे, अमड़ैगे उस ठाँइ ।
अजहूँ बेंरा समंद मै, बोलि बिगूचैं काँइ ॥१९३॥

९. हैरान को अंग

पंडित सेती कहि रहे, कह्या न मानै कोइ ।
ओ अगाध एका कहैं, भारी अचिरज होइ ॥१९४॥

बसे अपंडी पंड मैं, ता गति लषै न कोइ ।
कहै कबीरा संत हौ, बड़ा अचंभा मोहि ॥१९५॥

१०. लै कौ अंग

जिहि बन सीह न संचरै, पंषि उड़े नहिं जाइ ।
रैनि दिवस का गमि नहीं, तहाँ कबीर रह्या ल्यो लाइ ॥१९६॥

सुरति ढीकुली ले जल्यौ, मन नित ढोलन हार ।
कँवल कुवाँ मैं प्रेम रस, पीवै बारंबार ॥१९७॥

गंग जमुन उर अंतरै, सहज सुंनि ल्यौ घाट ।
तहाँ कबीरै मठ रच्या, मुनि जन जोवैं बाट ॥१९८॥

११. निहकर्मी पतिब्रता कौ अंग

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौं, बहु गुणियाल कंत ।
जे हँसि बोलौं और सौं तौं नील रँगाउँ दंत ॥१९९॥

नैना अंतरि आव तूँ , ज्यूँ हौं नैन झँपेउँ ।
नाँ हौं देखौं और कूँ, नाँ तुझ देखन देउँ ॥२००॥

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा ।
तेरा तुझकौं सौंपता, क्या लागै मेरा ॥२०१॥

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ ।
नैनँ रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ ॥२०२॥

कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास ।
समदहि तिणका बरि गिणै स्वाँति बूँद की आस ॥२०३॥

कबीर सुख कौ जाइ था, आगै आया दुख ।
जाहि सुख घरि आपणैं, हम जाणौं अरु दुख ॥२०४॥

दो जग तौ हम अंगिया, यहु डर नाहीं मुझ ।
भिस्त न मेरे चाहिये, बाझ पियारे तुझ ॥२०५॥

जे वो एकै जांणिया, तौ जांण्यां सब जांण ।
जे वो एक न जांणियाँ, तो सबही जाँण अजाँण ॥२०६॥

कबीर एक न जांणियाँ, तौ बहु जांण्यां क्या होइ ।
एक तै सब होत है, सब तैं एक न होइ ॥२०७॥

जब लगि भगति सकांमता, तब लग निर्फल सेव ।
कहै कबीर वै क्यूं मिलैं, निहकामी निज देव ॥२०८॥

आसा एक जु राम को, दूजी आस निरास ।
पाँणी माँह घर करैं, ते भी मरैं पियास ॥२०९॥

जे मन लागै एक सूँ, तौ निरबाल्या जाइ ।
तूरा दुइ मुखि बाजणाँ, न्याइ तमाचे खाइ ॥२१०॥

कबीर कलिजुग आइ करि , कीये बहुतज मीत ।
जिन दिल बंधी एक सूँ, ते सुखु सोवै नचींत ॥२११॥

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ ।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैचे तित जाउँ ॥२१२॥

तो तो करै त बाहुड़ौं, दुरि दुरि करै तौ जाउं ।
ज्यूँ हरि राखैं त्यूँ रहौं, जो देवै सो खाउं ॥२१३॥

मन प्रतीति न प्रेम रस, नां इस तन मैं ढंग ।
क्या जाणौं उस पीव सूं , कैसैं रहसी रंग ॥२१४॥

उस संग्रथ का दास हौ, कदे न होइ अकाज ।
पतिब्रता नाँगी रहै, तौ उसही पुरिस कौं लाज ॥२१५॥

घरि परमेसुर पाँहुणाँ, सुणौं सनेही दास ।
षट रस भोजन भगति करि, ज्यूँ कदे न छाड़े पास ॥२१६॥

आसा एक ज राम की, दूजी आस निवारि ।
आसा फिरि फिर मारसी, ज्यूँ चौपड़ि का सारि ॥२१७॥

आसा एक ज राम की, जुग जुग पुरवे आस ।
जै पाडल क्यों रे करै, बसैहिं जु चंदन पास ॥२१८॥

१२. चितावणी कौ अंग

कबीर नौबत आपणी, दिन दस लेहु बजाइ ।
ए पुर पटन ए गली, बहुरि न देखहु आइ ॥२१९॥

जिनके नौबत बाजती, मैंगल बंधते बारि।
एकै हरि के नाँव बिन, गए जन्म सब हारि ॥२२०॥

ढोल दमामा दुड़बड़ी, सहनाई संगि भेरि।
औसर चल्या बजाइ करि, है कोइ राखै फेरि ॥२२१॥

सातो सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।
ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काग ॥२२२॥

कबीर थोड़ा जीवणा, माड़े बहुत मंडाण।
सबही ऊभा मेल्हि गया, राव रंक सुलितान ॥२२३॥

इक दिन ऐसा होइगा, सब सूँ पड़ै बिछोइ।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होइ ॥२२४॥

कबीर पटल कारिवाँ, पंच चोर दस द्वार।
जम राँणौं गढ़ भेलिसी, सुमिरि लै करतार ॥२२५॥

कबीर कहा गरबियौ, इस जीवन की आस।
केसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास ॥२२६॥

कबीर कहा गरबियौ, देही देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबौ नहीं, ज्यूँ काँचली भुवंग ॥२२७॥

कबीर कहा गरबियौ, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि पर्‌युँ भ्वैं लेटणाँ, ऊपरि जामैं घास ॥२२८॥

कबीर कहा गरबियौ, चाँम लपेटे हड।
हैंबर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देबा खड ॥२२९॥

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
नाँ जाँणौं कहाँ मारिसी, कै घरि कै परदेस ॥२३०॥

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैबल फूल।
दिन दस के व्यौहार कौं, झूठे रंगि न भूल ॥२३१॥

जाँभण मरण विचारि करि, कूड़े काँम निहारि।
जिनि पंथू तुझ चालणां, सोई पंथ सँवारि ॥२३२॥

बिन रखवाले बाहिरा, चिड़ियै खाया खेत।
आधा प्रधा ऊबरै, चेति सकै तौ चेति ॥२३३॥

हाड़ जलै ज्यूँ लाकड़ी, केस जलै ज्यूँ घास ।
सब तग जलता देखि करि, भया कबीर उदास ॥२३४॥

कबीर मंदिर ढहि पड़या, सेंट भई सैबार ।
कोई चेजारा चिणि गया, मिल्या न दूजी बार ॥२३५॥

कबीर देवल ढहि पड़या, ईंट भई सैवार ।
करि चिजारा सौ प्रीतिड़ी, ज्यौं ढहै न दूजी बार ॥२३६॥

कबीर मन्दिर लाष का, जाड़िया हीरै लालि ।
दिवस चरि का पेषणां, बिनस जाइगा काल्हि ॥२३७॥

कबीर धूलि सकेलि करि, पुड़ी ज बाँधी एह ।
दिवस चारि का पेषणाँ, अंति षेह की षेह ॥२३८॥

कबीर जे धंधे तौ धूलि, बिन धंधे धूलै नहीं ।
तै नर बिनठे मूलि, जिनि धंधै मैं ध्याया नहीं ॥२३९॥

कबीर सपनैं रैनि कै, ऊघड़ि आये नैन ।
जीव पड़या बहू लूटि मैं, जागै तौ लैण न दैण ॥२४०॥

कबीर सुपनै रैनि के, पारस जीय मैं छेक।
जे सोऊँ तो दोइ जणाँ, जे जागूँ तो एक ॥२४१॥

कबीर इस संसार में घणे मनिष मतिहींण ।
राम नाम जाँणौं नहीं, आये टापी दीन ॥२४२॥

कहा कियौ हम आइ करि, कहा करेंगे जाइ ।
इत के भए न उत के चाले मूल गँवाइ ॥२४३॥

आया अणआया भया जे बहुरता संसार ।
पड़या भुलाँवाँ गफिलाँ, गये कुबंधी हारि ॥२४४॥

कबीर हरि की भगति बिन, ध्रिगी जीमण संसार ।
धूँवाँ केरा धौलहर, जात न लागै बार ॥२४५॥

जिहि हरि की चोरी करो, गये राम गुण भूलि ।
ते बिधना बागुल रचे, रहे अरध मुखि झूलि ॥२४६॥

माटी मलणि कुँभार कीं, घड़ीं सहै सिरि लात ।
इहि औसरि चेत्या नहीं, चूका अब की घात ॥२४७॥

इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्युँ पाली देह।
राम नाम जाण्या नहीं, अंति पड़ी मुख षेह ॥२४८॥

राम नाम जाण्यो नहीं, लागी मोटी षोड़ि।
काया हाँडी काठ की, ना ऊ चढ़े बहोड़ि ॥२४९॥

राम नाम जाण्या नहीं, बात बिनंठी मूलि।
हरत इहाँ ही हारिया, परति पड़ी मुख धूलि ॥२५०॥

राम नाम जाण्या नहीं, पल्यो कटक कुटुंब।
धंधा ही में मरि गया, बाहर हुई न बंब ॥२५१॥

मानिषा जनम दुर्लभ है, देह न बारंबार।
तरुवर थैं फल झड़ि पड़या , बहुरि न लागे डार ॥२५२॥

कबीर हरि का भगत करि, तजि विषया रस चोज।
बार बार नहीं पाइए, मानिषा जन्म की मौज ॥२५३॥

कबीर यहु तन जात है, सकै तो ठाहर लाइ।
कै सेवा करि साध की, कै गुण गोबिंद के गाइ ॥२५४॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो लहु बहोड़ि।
नागे हाथूँ ते गए , जिनकै लाख करोड़ि ॥२५५॥

यह तनु काचा कुंभ है, चोट चहूँ दिसि खाइ।
एक राम के नाँव बिन, जदि तदि प्रलै जाइ ॥२५६॥

यह तन काचा कुंभ है, लिया फिरै था साथि।
ढबका लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि ॥२५७॥

काँची कारीं जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि।
राम कबीरै रुचि भई, याही ओषदि साधि ॥२५८॥

कबीर अपनें जीवतैं, ए दोइ बातैं धोइ।
लोग बड़ाई कारणै, अछता मूल न खोइ ॥२५९॥

खंभा एक गइंद दोइ, क्यूँ करि बंधिसि बारि।
मानि करै तौ पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि ॥२६०॥

दीन गँवाया दूनीं सौं, दुनी न चाली साथि।
पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपणै हाथि ॥२६१॥

यह तन तौ सब बन भया, करंम भए कुहाड़ि ।
आप आप कूँ काटिहैं, कहैं कबीर बिचारि ॥२६२॥

कुल खोया कुल ऊबरै , कुल राख्यो कुल जाइ ।
राम निकुल कुल भेंटि लै, सब कुल रह्या समाइ ॥२६३॥

दुनिया के धोखै सुवा, चलै जु कुल की काँणि ।
तबकुल किसका लाजसी, जब ले धरया मसाँणि ॥२६४॥
पठानतर–(२६४) का कौ लाजसी

दुनियाँ भाँडा दुख का, भरी मुहाँमुह भूष ।
अदया अलह राम को, कुरहैं ऊँणी कूष ॥२६५॥

जिहि जेवड़ी जग बंधिया, तूँ जिनि बंधै कबीर ।
हैसी आटा लुँण ज्यूँ, सोना सँवाँ शरीर ॥२६६॥

कहत सुनत जग जात है, बिषै न सूझै काल ।
कबीर प्यालै प्रेम कै, भरि भरि पिवै रसाल ॥२६७॥

कबीर हद के जीव सूँ, हित करि मुखाँ न बोलि ।
जे लागे बेहद सूँ , तिन सूँ अंतर खोलि ॥२६८॥

कबीर केवल राम की, तूँ जिनि छाड़ै ओट ।
घण अहरणि बिचि लोह ज्यूँ, घणी सहै सिर चोट ॥२६९॥

कबीर केवल राम कहि, सुध गरीबी झालि ।
कूड़ बड़ाई कूड़सी, भारी पड़सी काल्हि ॥२७०॥

काया मंजन क्या करे , कपड़ धोइम धोइ ।
उजल हूवा न छूटिए, सुख नींदड़ी न सोइ ॥२७१॥

उजंल कपड़ा पहरि करि, पान सुपारी खाँहि ।
एकै हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुरि जाँहि ॥२७२॥

तेरा संगी कोइ नहीं, सब स्वारथी बंधी लोइ ।
मनि परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ ॥२७३॥

माँइ बिड़ाणी बाप बिड़, हम भी मंझि बिड़ाह ।
दरिया केरी नाव ज्यूँ , संजोगे मिलियाँह ॥२७४॥

इत प्रघर उत घर, बड़जण आए हाट ।
करम किरांणाँ बेचि करि, उठि ज लागो बाट ॥२७५॥

नान्हाँ काती चित्त दे, महँगे मोल बिकाइ ।
गाहक राजा राम है, और न नेड़ा आइ ॥२७६॥

डागल उपरि दौंड़णां , सुख नींदड़ी न सोइ ।
पुनै पाए द्यौहड़े, ओछी ठौर न खोइ ॥२७७॥

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तो निकसी भाजि ।
कब लग राखौं हे सखी, रुई पलेटी आगि ॥२७८॥

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास ।
मेरी पग का पैषड़ा, मेरी गल की पास ॥२७९॥

कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवणहार ।
हलके हलके तिरि गए, बूड़े तिनि सिर भार ॥२८०॥

ऊजड़ खेड़ै ठीकरी, घड़ि घड़ि गए कुँभार ।
रावण सरीखे चलि गए, लंका के सिकदार ॥२८१॥

मीति बिसारी बाबरे , अचिरज कीया कौन ।
तन माटी मैं मिलि गया, ज्यूँ आटे मैं लूण ॥२८२॥

आजि काल्हि कि पचे दिन, जंगल होइगा वास ।
ऊपरि ऊपरि फिरहिगे, ढोर चरंदे घास ॥२८३॥

मरहिंगे मरि जाहिंगे, नांव न लेगा कोइ ।
ऊजड़ जाइ बसाहिंगे, छड़ि बसंती लोइ ॥२८४॥

कबीर खेति किसाण का, म्रगौं खाया खाड़ि ।
खेत बिचारा क्या करे, जो खसम न करई बाड़ि ॥२८५॥

मडा जलै लकडी जलै, जलै जलावणहार ।
कौतिगहारे भी जलैं, कासनि करौ पुकार ॥२८६॥

कबीर देवल हाड का, मारी तणा बधाँण ।
खड हडता पाया नहीं, देवल का रहनाँण ॥२८७॥

कबीर इहै चितावणीं, जिन संसारी जाइ ।
जै पहिली सुख भोगिया, तिन का गूड ले खाइ ॥२८८॥

पीपल रूनों फूल बिन, फलबिन रूनी गाइ ।
एकाँ एकाँ माणसां, टापा दीन्हा आइ ॥२८९॥

राम नाम जाण्या नहीं, मेल्या मनहिं बिसारि ।
ते नर हाली बादरी, सदा परा पराए बारि ॥२९०॥

राम नाम जाण्या नहीं, ता मुखि आनहिं आन ।
कै मूसा कै कातरा, खाता गया जनम ॥२९१॥

राम नाम जाण्यौं नहीं, हूवा बहुत अकाज ।
बूड़ा लौरे बापुड़ा, बड़ा बूटा की लाज ॥२९२॥

पाणी ज्यौर तालाब का, दह दिसी गया बिलाइ ।
यह सब योही जायगा, सकै तो ठाहर लाइ ॥२९३॥

यह तन काचा कुंभ है, माँहीं किया ढ़िग बास ।
कबीर नैंण निहारियाँ, तौ नहीं जीवण की आस ॥२९४॥

दुनियां कै मैं कुछ नहीं, मेरे दुनी अकथ ।
साहिब दरि देखौं खड़ा, सब दुनियां दोजग जंत ॥२९५॥

कबीर साषत की सभा, तू मति बैठे जाइ ।
एकै बाड़ै क्यू बड़ै, रीझ गदहड़ा गाइ ॥२९६॥

थली चरंते म्रिघ लै, बीध्या एक ज सौंण ।
हम तो पंथी पंथ सिरि, हर्‌या चरैगा कौण ॥२९७॥

ज्यूं कोली पेताँ बुणै, बुणतां आवै बोड़ि ।
ऐसा लेखा मीच का, कछु दौड़ि सके तौ दौड़ि ॥२९८॥

मेर तेर की जिवणी, बसि बंध्या संसार ।
कहाँ सुकुँणवा सुत कलित, दाझणि बारंबार ॥२९९॥

मेर तेर की रासड़ी, बलि बंध्या संसार ।
दास कबीरा किमि बंधै, जाकै राम अधार ॥३००॥

कबीर नाँव तो जरजरी, भरी बिराणै भारि ।
खेवट सौं परचा नहीं, क्यों करि उतरैं पारि ॥३०१॥

कबीर पगड़ा दूरि है, जिनकै बिचिहै राति ।
का जाणौं का होइगा, ऊगवै तै परभाति ॥३०२॥

१३. मन कौ अंग

मन कै मतै न चालिये, छाड़ि जीव की बाँणिं ।
ताकू केरे सूत ज्यूँ, उलटि अपूठा आँणि ॥३०३॥

चिंता चिति निबारिए , फिर बूझिए न कोइ ।
इंद्री पसर मिटाइए , सहजि मिलैगा सोइ ॥३०४॥

आसा का ईंधण करूँ, मनसा करूँ बिभूति ।
जोगी फेरी फिल करौं, यौं बिननाँ वै सूति ॥३०५॥

कबीर सेरी सांकड़ी, चंचल मनवाँ चोर ।
गुण गावै लैलीन होइ, कछू एक मन मैं और ॥३०६॥

कबीर मारू मन कूँ, टूक टूक ह्वै जाइ ।
विष की क्यारी बोइ करि, लुणत कहा पछिताइ ॥३०७॥

इस मन कौ बिसमल करौं, दीठा करौं अदीठ ।
जे सिर राखौं आपणां, तौ पर सिरिज अंगीठ ॥३०८॥

मन जाणैं सब बात, जाणत ही औगुण करै ।
काहे की कुसलात, कर दीपक कूँवै पड़ै ॥३०९॥

हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणां न जाइ ।
मुख तौ तौपरि देखिए, जे मन की दुबिधा जाइ ॥३१०॥

मन दीया मन पाइए , मन बिन मन नहीं होइ ।
मन उनमन उस अंड ज्यूं , अनल अकासाँ जोइ ॥३११॥

मन गोरख मन गोविंदो, मन ही औघड़ होइ ।
जे मन राखै जतन करि , तौ आपैं करता सोइ ॥३१२॥

एक ज दोसत हम किया, जिस गलि लाल कवाइ ।
सब जग धोबी धोइ मरै, तौ भी रंग न जाइ ॥३१३॥

पाँणी ही तैं पातला, धूवाँ हीं तैं झींण ।
पवनाँ बेगि उतावला, सो दोसत कबीरै कीन्ह ॥३१४॥

कबीर दुरी पलांड़ियाँ, चाबक लीया हाथि ।
दिवस थकाँ साँई मिलौ, पीछैं पड़िहैं राति ॥३१५॥

मनवां तौ अधर बस्या, बहुतक झीणां होइ ।
आलोकत सचु पाइया, कबहूँ न न्यारा होइ ॥३१६॥

मन न मारया मन करि , सके न पंच प्रहारि ।
सीला साच सरधा नहीं, इंद्री अजहुँ उघारि ॥३१७॥

कबीर मन बिकरै पड्या , गया स्वादि कै साथि ।
गलका खाया बरज्ताँ अब क्यूँ आवै हाथि ॥३१८॥

कबीर मन गाफिल भया, सुमिरण लागै नाहिं ।
घणीं सहेगा सासनाँ, जम की दरगह माहिं ॥३१९॥

कोटि कर्म पल मैं करै , यहु मन बिषिया स्वादि ।
सतगुर सबद न मानई, जनम गँवाया बादि ॥३२०॥

मैंमंता मन मारि रे, घटहीं माँहीं घेरि ।
जबहीं चालै पीठि दै, अंकुश दे दे फेरि ॥३२१॥

मैमंता मन मारि रे, नान्हाँ करि करि पीसि ।
तब सुख पावै सुदंरी, ब्रह्म झलकै सीसि ॥३२२॥

कागद केरी नाँव री, पाँणी केरी गंग ।
कहैं कबीर कैसे तिरूं, पंच कुसंगी संग ॥३२३॥

कबीर यह मन कत गया, जो मन होता काल्हि ।
डूँगरि बूठा मेह ज्यूँ, गया निवाँणाँ चालि ॥३२४॥

मृतक कूं धी जौं नहीं, मेरा मन बी है ।
बाजै बाव बिकार की, भी मूवा जीवै ॥३२५॥

काटि कूटि मछली, छींकै धरी चहोड़ि ।
कोइ एक अषिर मन बस्या, दह मैं पड़ी बहोड़ि ॥३२६॥

कबीर मन पंषी भया, बहुतक चढ़्या अकास ।
उहाँ हीं तै गिरि पड़या , मन माया के पास ॥३२७॥

भगति दुवारा सकड़ा, राई दसवैं भाइ ।
मन तौ मैंगल ह्वै रह्यो, क्यूँ करि सकै समाइ ॥३२८॥

करता था तौ क्यूँ रह्या, अब करि क्यूँ पछताइ ।
बोवै बँबूल का, अंब कहाँ तैं खाइ ॥३२९॥

काया देवल मन धजा, बिषै लैहरि फरराई ।
मन चाल्याँ देवल चलै, ताका सर्बस जाइ ॥३३०॥

मनह मनोरथ छाँड़ि दे , तेरा किया न होइ ।
पाँणी मैं घीव नीकसै, तो रूखा खाइ न कोइ ॥३३१॥

काया कसूं कमाँण ज्यूं , पंचतत्त करि बांण ।
मारौ तौ मन मृग कौं, नहीं तौ मिथ्या जाँण ॥३३२॥

कबीर मन मृगा भया, खेत बिराना खाइ ।
सूलाँ करि करि से किसी, जब खसम पहुँचे आइ ॥३३३॥

मन को मन मिलता नहीं, तौ होता तन का भंग ।
अब ह्वै रहु काली काँवली, ज्यौं दूजा चढ़ै न रंग ॥३३४॥

जौ तन काँहै मन धरै, मन धरि निर्मल होइ ।
साहिब सौ सनमुख रहै, तौ फिरि बालक होइ ॥३३५॥

मूवा मन हम जीवत देख्या , जेसे मड़िहट भूत ।
मूवाँ पीछे उठि उठि लागै, ऐसा मेरा पूत ॥३३६॥

मूवै कौंधी गौ नहीं, मन का किया बिनास ।
साधू तब लग डर करै, जब लग पंजर सास ॥३३७॥

कबीर हरि दिवान कै, क्यूंकर पावै दादि ।
पहली बुरा कमाइ करि, पीछे करै फिलादि ॥३३८॥

१४.सूषिम मारग कौ अंग

कौंण देस कहाँ आइया, कहु क्यूँ जांण्यां जाइ ।
उहू मार्गपावैं नहीं, भूलि पड़े इस माँहि ॥३३९॥

उतीथैं कोई न आवई , जाकूं बूझौं धाइ ।
इतथैं सबै पठाइये, भार लदाइ लदाइ ॥३४०॥

सबकूँ बूझत मैं फिरौं, रहण कहै नहीं कोइ ।
प्रीति न जोड़ी राम सूँ, रहण कहाँ थैं होइ ॥३४१॥

चलौ चलौं सबको कहै, मोहि अंदेसा और ।
साहिब सूँ पर्चा नहीं, ए जांहिगें किस ठौर ॥३४२॥

जाइबे कौ जागा नहीं, रहिबे कौं नहीं ठौर ।
कहै कबीरा संत हौ, अबिगति की गति और ॥३४३॥

कबीर मारिग कठिन है, कोइ न सकई जाइ ।
गए ते बहुड़े नहीं, कुसल कहै को आइ ॥३४४॥

जन कबीर का सिषर घर , बाट सलैली सैल ।
पाव न टिकै पपीलका , लोगनि लादे बैल ॥३४५॥

जहाँ न चींटी चढ़ि सकै, राई ना ठहराइ ।
मन पवन का गमि नहीं, तहाँ पहूँचे जाइ ॥३४६॥

कबीर मारग अगम है, सब मुनिजन बैठे थाकि ।
तहाँ कबीरा चलि गया, गहि सतगुर की साषि ॥३४७॥

सुर नर थाके मुनि जनां, जहां न कोई जाइ ।
मोटे भाग कबीर के , तहाँ रहे घर छाइ ॥३४८॥

कबीर संसा जीव मैं, कोइ न कहैं समुझाइ ।
नाँनाँ बांणी वोलता, सो कत गया बिलाइ ॥३४९॥

१५.सूषिम जनम कौ अंग

कबीर सूषिम सुरति का, जीब न जाँणै जाल ।
कहै कबीरा दूरि करि, आतम अदिष्टि काल ॥३५०॥

प्राण पंड कौं तजि चलै, मूवा कहै सब कोइ ।
जीव छताँ जांमैं मरै, सूषिम लखै न कोइ ॥३५१॥

कबीर अंतहकरन मन, करन मनोरथ माँहि ।
उपजित उतपति जाँणिए, बिनसै जब बिसरांहि ॥३५२॥

कबीर संसा दूरि करि, जाँमण मरन भरम ।
पंच तत तत्तहि मिलै, सुनि समाना मन ॥३५३॥

१६. माया कौ अंग

जग हटवाड़ा स्वाद ठग, माया वेसाँ लाइ ।
रामचरन नीकाँ गही, जिनि जाइ जनम ठगाइ ॥३५४॥

कबीर माया पापणीं, फंध ले बैठी हाटि ।
सब जग तौ फंधै पड़्या, गया कबीरा काटि ॥३५५॥

कबीर माया पापिणीं, लालै लाया लोग ।
पूरी किनहूँ न भोगई, इनका इहै बिजोग ॥३५६॥

कबीर माया पापणी, हरि सूँ करे हराम ।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम ॥३५७॥

जांणीं जे हरि कौं भजौ, यो मनि मोटी आस ।
हरि बिचि घालै अंतरा, माया बड़ी बिसास ॥३५८॥

कबीर माया मोहनी, मोहे जाँण सुजाँण ।
भागाँ ही छूटै नहीं, भरि भरि मारै बाँण ॥३५९॥

कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खाँड़ ।
सतगुर की कृपा भई, नहीं तौ करती भांड़ ॥३६०॥

कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घाँणि ।
कोइ एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की काँणि ॥३६१॥

कबीर माया मोहनी, माँगी मिलै न हाथि ।
मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डोलै साथि ॥३६२॥

माया दासी संत की, ऊँभी देइ असीस ।
बिलसी अरु लातौं छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस ॥३६३॥

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर ।
आसा त्रिष्नाँ नाँ मुई, यौं कहि गया कबीर ॥३६४॥

आसा जीवै जग मरै , लोग मरे मरि जाइ ।
सोइ मूवे धन संचते, सो उबरे जे खाइ ॥३६५॥

कबीर सो धन संचिए , जो आगैं कूँ होइ ।
सीस चढ़ाये पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥३६६॥

त्रीया त्रिष्णाँ पापणी, तासूँ प्रीति न जोड़ि ।
पैंड़ी चढ़ि पाछाँ पड़ै, लागै मोटी खोड़ि ॥३६७॥

त्रिष्णाँ सींची नाँ बुझै, दिन दिन बढ़ती जाइ ।
जवासा के रूप ज्यूँ, घण मेहाँ कुमिलाइ ॥३६८॥

कबीर जग की को कहै, भौ जलि बूड़ैं दास ।
पारब्रह्म पतिछाड़ि करि, करैं मानि की आस ॥३६९॥

माया तजी तौं का भया, मानि तजी नहीं जाइ ।
मानि बड़ेमुनियर गिले, मानि सबनि कौं खाइ ॥३७०॥

रामहिं थोड़ा जाँणि करि , दुनियाँ आगैं दीन ।
जीवाँ कौं राजा कहैं, माया के अधीन ॥३७१॥

रज बीरज की कली, तापरि साज्या रूप ।
रामनाम बिन बूड़िहै, कनक काँमणी कूप ॥३७२॥

माया तरवर त्रिबिध का, साखा दुख संताप ।
सीतलता सुपिनै नहीं, फल फीकौ तनि ताप ॥३७३॥

कबीर माया ढाकड़ीं, सब किसही कौं खाइ ।
दाँत उपाड़ौं पापणीं, जे संतौं नेड़ी जाइ ॥३७४॥

नलनी सायर घर किया, दौं लागी बहुतेणि ।
जलही माँहैं जलि मुई, पूरब जनम लिषेणि ॥३७५॥

कबीर गुण की बादली, ती तरबानीं छाँहिं ।
बाहरि रहै ते ऊबरे, भीगे मंदिर माँहिं ॥३७६॥

कबीर माया मोह की, भई अँधारी लोइ ।
जे सूते ते मुसि लिये, रहे बसत कूँ रोइ ॥३७७॥

संकल ही तैं सब लहे, माया इहि संसार ।
ते क्यूँ छूटै बापुड़े, बाँधे सिरजनहार ॥३७८॥

बाड़ि चढ़ती बेलि ज्यूँ , उलझी आसा फंध ।
तूटै पणि छूटै नहीं, भई ज बाचा बंध ॥३७९॥

सब आसण आसा तणाँ, त्रिवर्तिकै को नाहिं ।
थिवरिति कै निबहै नहीं, परवर्ति परपंच माँहिं ॥३८०॥

कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह ।
जिहि धारि जिता बँधावणाँ, तिहिं तिता अँदोह ॥३८१॥

माया हमगौं यों कह्या, तू मति दे रे पूठि ।
और हमारा हम बलू , गया कबीरा रूठि ॥३८२॥

बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ़्या कलंक ।
और पँखेरू पी गए, हंस न बोवै चंच ॥३८३॥

कबीर माया जिनि मिलैं, सो बरियाँ दे बाँह ।
नारद से मुनियर गिले, किसौ भरौसौ त्याँह ॥३८४॥

माया की झल जग जल्या, कनक काँमाणीं लागि ।
कहु धौं किहि बिधि राखिये, रूई पलेटी आगि ॥३८५॥

कबीर जिभ्या स्वाद ते, क्यूँ पल में ले काम ।
अंगि अविद्या ऊपजै, जाइ हिरदा मैं राम ॥३८६॥

माया काल की खाँणि है, धरि त्रिगुणी वपरौति ।
जहाँ जाइ तहाँ सुख नहीं, यहु माया की रीति ॥३८७॥

माया मन की मोहनी, सुर नर रहे लुभाइ ।
इहि माया जंग खाइया, माया कौ कोई खाइ ॥३८८॥

१७. चाँणक कौ अंग

जीव बिलव्या जीव सो, अलष न लखिया जाइ ।
गोविंद मिलै न झल बुझै रही बुझाइ बुझाइ ॥३८९॥

इही उदर कै कारणै, जग जाँच्यौ निस जाम ।
स्वाँमीं पणौ जु सिर चढ़्यौ, सर्‌या न एको काम ॥३९०॥

स्वामी हूँणाँ सोहरा, दोब्धा हूँणाँ दास ।
गाडर आँणी ऊन कूं, बाँधी चरै कपास ॥३९१॥

स्वामीं हूवा सीतका, पैका कार पचास ।
राम नाम काँठैं रह्या, करैं सिषां की आस ॥३९२॥

कबीर तष्टा टोकणीं लीए फिरै सुभाइ ।
राम नाम चीन्हैं नहीं, पीतलि ही कै चाइ ॥३९३॥

कलि का स्वामी लोभिया, पीतलि धरी षटाइ ।
राज दुबाराँ यौं फिरै, ज्यूँ हरिहाई गाइ ॥३९४॥

कलि का स्वामी लोभिया, मनसा धरी बधाइ ।
दैंहि पईसा ब्याज कीं, लेखाँ करताँ जाइ ॥३९५॥

कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ ।
लालच लोभी मसकरा, तिनकूं आदर होइ ॥३९६॥

चारिउ बेद पढ़ाइ करि, हरि सूँ न लाया हेत ।
बालि कबीरा ले गया, पंड़ित ढूँढ़ै खेत ॥३९७॥

बाँम्हणा गुरू जगत का, साधू का गुरू नाहिं ।
उरझि पुरझि करि रह्या, चारिउँ बेदाँ भाहिं ॥३९८॥

साषित सण का जेवणा, भींगाँ सूँ कठठाइ ।
ढोइ अषिर गुरू बाहिरा बांध्या जमपुरि जाइ ॥३९९॥

पाड़ोसी सू रूसणाँ, तिल तिल सुख की हाँणि ।
पंड़ित भए सरावगी, पाँणी पीवें छाँणि ॥४००॥

पंड़ित सेती कहि रह्या, भीतरि भेद्या नाहिं ।
औरूँ कौं परमोधतां, गया मुहरकाँ माँहि ॥४०१॥

चतुराई सूवै पढ़ी, सोई पंजर माँहि ।
फिरि प्रमोधै आन कौं, आपण समझै नाहिं ॥४०२॥

रासि पराई राषताँ, खाया घर का खेत ।
औरौं कौ प्रमोधतां, मुख मैं पड़िया रेत ॥४०३॥

तारा मंडल बैसि करि , चंद बड़ाई खाइ ।
उदै भया जब सूर का, स्यूँ ताराँ छिपि जाइ ॥४०४॥

देषण के सबको भले, जिसे सीत के कोट ।
रवि कै उदै न दीसहीं, बधै न जल की पोट ॥४०५॥

तीरथ करि करि जग मुवा, डूँधै पाँणी न्हाइ ।
राँमहि राम जपंतडाँ, काल घसीट्याँ जाइ ॥४०६॥

कासी काँठैं घर करैं, पीवै निर्मल नीर ।
मुकति नहीं हरि नाँव बिन, यौं कहै दास कबीर ॥४०७॥

कबीर इस संसार कौं, समझाऊं कै बार ।
पूँछ जु पकड़ै भेड़ की, उतरया चाहै पार ॥४०८॥

कबीर मन फूल्या फिरै, करता हूँ मैं ध्रंम ।
कोटि क्रम सिरि ले चल्या, चेत न देखै भ्रम ॥४०९॥

मोर तोर की जेवड़ी, बलि बंध्या संसार ।
काँ सिकडूँ बासुत कलित, दाझड़ बारंबार ॥४१०॥

बाँम्हण गुरू जगत का, भर्म कर्म का पाइ ।
उलझि पुलझि करि मरि गया, चार्‌यों बेंदा माँहिं ॥४११॥

कलि का बाम्हण मसकरा ताहि न दीजै दान ।
स्यौं कुंटउ नरकहि चलै साथ चल्या जजमान ॥४१२॥

बाम्हण बूड़ा बापुड़ा, जेनेऊ कै जोरि ।
लख चौरासी माँ गेलई, पारब्रह्म सों तोड़ि ॥४१३॥

कबीर साषत की सभा, तू जिनि बैसे जाइं ।
एक दिबाड़ै क्यूं बड़ै, रीझ गदेहड़ा गाइ ॥४१४॥

साषत ते सूकर भला, सूचा राखे गाव ।
बूड़ा साषत बापुड़ा, बैसि समरणी नांव ॥४१५॥

साषत बाम्हण जिनि मिलैं, बैसनी मिलौ चडाल ।
अंक माल दै भेंटिए , मानूँ मिले गोपाल ॥४१६॥

कबीर कहै पोर कुँ , तूँ समझावै सब कोइ ।
संसा पड़गा आपको, तौ और कहै का होइ ॥४१७॥

सुणत सुणावत दिन गए ,उलझि, न सुलझा मान ।
कहै कबीर चेत्यौ नहीं, अजहुं पहलौ दिन ॥४१८॥

पद गायाँ मन हरषियाँ, साषी कह्यां आनंद ।
सो तत नाँव न जाणियाँ, गल मैं पड़ि गया फंद ॥४१९॥

१८. करणीं बिना कथणीं कौ अंग

कथणीं कथी तौ क्या भया, जे करणीं नाँ ठहराइ ।
कालबूत के कोट ज्यूँ , देषतहीं ढहि जाइ ॥४२०॥

जैसी मुख तैं नीकसैं, तैसी चालै चाल ।
पारब्रह्म नेड़ा रहै, पल मैं करै निहाल ॥४२१॥

जैसी मुष तैं नीकसै, तैसी चालै नाहिं ।
मानिष नहीं ते स्वान गति, बाँध्या जमपुर जाँहिं ॥४२२॥

पद गोएँ मन हरषियाँ, साषी कह्याँ अनंद ।
सो तन नांव न जाँणियाँ, गल मैं पड़िया फंध ॥४२३॥

करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तूंड ।
जांणै बूझे कुछ नहीं, यौं ही आंधां रूंड ॥४२४॥

१९. कथणीं बिना करणीं कौ अंग

मैं जान्यूँ पढ़िबौ भलौ, पढ़िबा थैं भलौ जोग ।
रामँ नाँम सूँ प्रीति करि, भल भल नींदी लोग ॥४२५॥

कबीर पढ़िबा दूरि करि , पुस्तक देइ बहाइ ।
बावन आषिर सोधि करि , ररै ममैं चित लाइ ॥४२६॥

कबीर पढ़िबा दूरि करि, आथि पढ़्या संसार ।
पीड़ न उपजी प्रीति सूँ , तौ क्यूँ करि करै पुकार ॥४२७॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ ।
एकै अषिर पीव का, पढ़ै सु पंडित होइ ॥४२८॥

२०.कामी नर कौ अंग

कांमणि काली नागणीं, तीन्यूँ लोक मँझारि ।
राम सनेही ऊबरे, विषई खाये झारि ॥४२९॥

काँमणि मीनीं षाँणि की, जे छड़ौं तौ खाइ ।
जे हरि चरणां राचियां, तिनके निकटि न जाइ ॥४३०॥

परनारी राता फिरै, चोरी बिढ़ता खांहिं ।
दिवस चारि सरसा रहैं, अंति समूला जांहिं ॥४३१॥

पर नारी पर सुंदरी, बिरला बंचै कोइ ।
खाताँ मीठी खाँड सी, अंति कालि बिष होइ ॥४३२॥

पर नारी कै राचणैं, औगुण है गुण नाँहि ।
पार समंद मैं मंझला, केता बहिं बहिं जाँहि ॥४३३॥

पर नारी का 'राचणौं, जिसी ल्हसण की पाँनि ।
पूणैं बैसि रषाइए , परगट होइ दिवानि ॥४३४॥

नर नारी सब नरक है, जब लग देह सकाम ।
कहै कबीर ते राँम के , जे सुमिरै निहकाम ॥४३५॥

नारी सेती नेह, बुधि बिबेक सबही हरै ।
काँइ गमावै देह कारिज कोई नाँ सरै ॥४३६॥

नाना भोजन स्वाद सुख, नारी सेती रंग ।
बेगि छाँड़ि पछताइगा, ह्वै है मूरति भंग ॥४३७॥

नारि नसाबैं तीनि सुख, जा नर पासैं होइ ।
भगति मुकति निज ग्यान मैं, पैसि न सकई कोइ ॥४३८॥

एक कनक अरु काँमनी, बिष फल कीएउ पाइ ।
देखै ही थै बिष चढ़े, खायै सूँ मरि जाइ ॥४३९॥

एक कनक अरु काँमनी, दोऊ अंगनि की झाल ।
देखें ही तन प्रजलै, परस्याँ ह्वै पैमाल ॥४४०॥

कबीर भग की प्रीतड़ी, केते गए गडंत ।
केते अजहूँ जायसी, नरकि हसंत हसंत ॥४४१॥

जोरू जूठणि जगत जगत की, भले बुरे का बीच ।
उत्यम ते अलगे रहैं निकटि रहैं तैं नीच ॥४४२॥

नारी कुंड नरक का, बिरला थंभै बाग ।
काई साधू जन ऊबरै, सब जग मूंवा लाग ॥४४३॥

सुंदरि थे सूली भली, बिरला बचै कोय ।
लोह निहाला अगनि मैं, जालि बलि कोयला होय ॥४४४॥

अंधा नर चैते नही, कटै न संसै सूल ।
और गुनह हरि बकससी, काँमी डाल न मूल ॥४४५॥

भगति बिगाड़ी काँमियाँ, इंद्री केरै स्वादि ।
हीरा खोया हाथ थैं, जनम गंवाया बादि ॥४४६॥

कामी अमीं न भावई, विषई कौं ले सोधि ।
कुबधि न जाई जीव की, भावै स्यंभ रहो प्रमोधि ॥४४७॥

बिषै बिलंबी आत्माँ, मजकण खाया सोधि ।
ग्याँन अंकूर न ऊगई, भावै निज प्रमोध ॥४४८॥

बिषै कर्म की कंचुली, पहरि हुआ नर नाग ।
सिर फोड़ै सूझै नहीं, को आगिला अभाग ॥४४९॥

कामी कदे न हरि भजै, जपै न कैसौ जाप ।
राँम कह्याँ थैं जलि मरै, को पूरिबला पाप ॥४५०॥

काँमी लज्जा ना करै , मन माँहि अहिलाद ।
नींद न माँगै साँथरा, भूख न माँगै स्वाद ॥४५१॥

नारि पराई आपणीं, भुगत्या नरकहिं जाइ ।
आगि आगि सबरौ कहै, तामै हाथ न बाहि ॥४५२॥

कबीर कहता जात हौं, चेतै नहीं गंवार ।
बैरागी गिरही कहा, काँमी वार न पार ॥४५३॥

ग्यानी तो नींडर भया, माँने नाँहीं संक ।
इंद्री केरे बसि पड़्या, भूंचै विषै निसंक ॥४५४॥

ग्याँनी मूल गंवाइया, आपण भये करंता ।
ताथै संसारी भला, मन मैं रहै डरंता ॥४५५॥

जहाँ जलाई सुंदरी, तहाँ तूं जिनि जाइ कबीर ।
भसमी ह्वै करि जासिसी, सो मैं सवां सरीर ॥४५६॥

नारी नाहीं नाहरी, करै नैन की चोट ।
कोई एक हरिजन ऊबरै, पार कला की ओट ॥४५७॥

राम कहंता जे खिजै, कोढ़ी ह्वै गलि जाँहि ।
सूकर होइ करि औतरै, नाक बूड़ँते खाँहि ॥४५८॥

कामी थैं कुतौ भलौ, खोलें एक जू काछ ।
राम नाम जाणै नहीं, बाँबी जेही बाच ॥४५९॥

काँम काँम सबको कहैं, काँम न चीन्है कोइ ।
जेती मन में कामना, काम कहीजै सोइ ॥४६०॥

२१. सहज कौ अंग

सहज सहज सबकौ कहै, सहज न चीन्है कोइ ।
जिन्ह सहजैं विषिया तजो, सहज कहीजैं सोइ ॥४६१॥

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हें कोइ ।
पांचू राखै परसती सहज कही जै सोइ ॥४६२॥

सहजै सहजै सब गए , सुत बित कांमणि कांम ।
एकमेक ह्वै मिलि रह्या दास कबीरा राम ॥४६३॥

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ ।
जिन्ह सहजैं हरिजी मिलै, सहज कहीजै सोइ ॥४६४॥

२२. साँच कौ अंग

कबीर पूँजी साह की, तूँ जिनि खोवै ष्वार ।
खरी बिगूचनि होइगी, लेखा देती बार ॥४६५॥

लेखा देणाँ सोहरा, जे दिल साँचा होइ ।
उस चंगे दीवाँन मैं, पला न पकड़ै कोइ ॥४६६॥

कबीर चित्त चमंकिया, किया पयाना दूरि ।
कइथि कागद काढ़िया, तब दरिगह लेखा पूरि ॥४६७॥

कइथि कागद काढ़ियां, तब लेखैं वार न पार।
जब लग साँस सरीर मैं, तब लग राम संभार ॥४६८॥

यहु सब झूठी बंदिगी, बरियाँ पंच निवाज।
साचै मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ॥४६९॥

कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतै तब दोइ।
चढ़ि मसीति एकै कहै, दरि क्यूँ साचा होइ ॥४७०॥

काजी मुलाँ भ्रमियाँ, चल्या दुनीं कै साथि।
दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥४७१॥

जोरी कलिर जिहै करै, कहते हैं ज हलाल।
जब दफ़तर देखंगा दई, तब ह्वैगा कौंण हवाल ॥४७२॥

जोरी कीयाँ जुलम है, माँगे न्याव खुदाइ।
खलिक दरि खूनी खडा, मार मुहे मुहि खाइ ॥४७३॥

साँई सेती चोरियाँ, चोराँ सेती गुझ।
जाँणैगा रे जीवड़ा, मार पड़ैगी तुझ ॥४७४॥

सेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबैं जाइ।
जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौं कहाँ खुदाइ ॥४७५॥

खूब खाँड है खोपड़ी, माँहि पड़ै दुक लूँण।
पेड़ा रोटी खाइ करि, गला कटावै कौंण ॥४७६॥

पापी पूजा बैसि करि, भषै माँस मद दोइ।
तिनकी दष्या मुकति नहीं, कोटि नरक फल होइ ॥४७७॥

सकल बरण इकत्र ह्वै, सकति पूजि मिलि खाँहि।
हरि दासनि की भ्रांति करि, केवल जमपुर जाँहि ॥४७८॥

कबीर लज्या लोक की, सुमिरै नाँही साच।
जानि बूझि जिनि कंचन तजै, काठा पकड़े काच ॥४७९॥

कबीर जिनि जिनि जाँणियाँ, करत केवल सार।
सो प्राणी काहै चलै, झूठे जग की लार ॥४८०॥

झूठे को झूठा मिलै, दूणाँ बधै सनेह।
झूठे कूँ साचा मिलै, तब ही तूटै नेह ॥४८१॥

२३. भ्रम बिधौंसण कौ अंग

पांहण केरा पूतला, करि पूजै करतार ।
इही भरोसै जे रहै, ते बूड़े काली धार ॥४८२॥

काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट ।
पाँहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी बाट ॥४८३॥

पांहिन फूँका पूजिए , जे जनम न देई जाब ।
आँधा नर आसामुषी, यौं ही खोवै आब ॥४८४॥

हम भी पाहन पूजते, होते रन के रोझ ।
सतगुर की कृपा भई, डार्‌या सिर थैं बोझ ॥४८५॥

जेती देषौं आत्मा, तेता सालिगराँम ।
साधू प्रतषि देव हैं, नहीं पाथर सू काँम ॥४८६॥

सेवैं सालिगराँम कूँ ,मन की भ्रांति न जाइ ।
सीतलता सुपिनैं नहीं, दिन दिन अधकी लाइ ॥४८७॥

सेवैं सालिगराँम कूँ , माया सेती हेत ।
बोढ़ें काला कापड़ा, नाँव धरावैं सेत ॥४८८॥

जप तप दीसै थोथरा, तीरथ ब्रत बेसास ।
सूवै सैंबल सेविया, यौं जग चल्या निरास ॥४८९॥

तीरथ त सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाइ ।
कबीर मूल निकंदिया, कौंण हलाहल खाइ ॥४९०॥

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि ।
दसवाँ द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछाँणि ॥४९१॥

कबीर दुनियाँ देहुरै, सीस नवाँवण जाइ ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तूँ ताही सौ ल्यौ लाइ ॥४९२॥

पाथर ही का देहुरा, पाथर ही का देव ।
पूजणहार अंधला, लागा खोटी सेव ॥४९३॥

कबीर गुड कौ गमि नहीं, पाँपण दिया बनाइ ।
सिष सोधी बिन सेविया, पारि न पहुँच्या जाइ ॥४९४॥

२४. भेष कौ अंग

कर सेती माला जपै, हिरदै बहै डंडूल ।
पग तौ पाला मैं गिल्या, भाजण लागी सूल ॥४९५॥

कर पकरै अँगुरी गिनै, मन धावै चहुँ वीर ।
जाहिं फिराँयाँ हरि मिलै, सो भया काठ की ठौर ॥४९६॥

माला पहिरैं मनमुषी, ताथैं कछु न होइ ।
मन माला कौं फैरताँ, जुग उजियारा सोइ ॥४९७॥

माला पहिरै मनमुषी, बहुतैं फिरै अचेत ।
गाँगी रोले बहि गया, हरि सूँ नाँहीं हेत ॥४९८॥

कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि ।
मन न फिरावै आपणों, कहा फिरावै मोहि ॥४९९॥

कबीर माला मन की, और संसारी भेष ।
माला पहर्‌या हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देष ॥५००॥

माला पहर्‌याँ कुछ नहीं रुल्य मूवा इहि भारि ।
बाहरि ढोल्या हींगलू , भीतरि भरी भँगारि ॥५०१॥

माला पहर्‌याँ कुछ नहीं, काती मन कै साथि ।
जब लग हरि प्रगटै नहीं, तब लग पड़ता हाथि ॥५०२॥

माला पहर्‌याँ कुछ नहीं, गाँठि हिरदा की खोइ ।
हरि चरनूँ चित्त राखिये, तौ अमरापुर होइ ॥५०३॥

माला पहर्‌या कुछ नहीं, भगति न आई हाथि ।
माथौ मूँछ मुँडाइ करि, चल्या जगत कै साथि ॥५०४॥

साँईं सेती साँच चलि, औराँ सूँ सुध भाइ ।
भावै लंबे केस करि, भावै घुरड़ि मुड़ाइ ॥५०५॥

केसौं कहा बिगाड़िया, जे मूँड़े सौ बार ।
मन कौं न काहे न मूँड़िए , जामैं बिषै बिकार ॥५०६॥

मन मेवासी मूँड़ि ले केसौं, मूँड़े काँइ ।
जे कुछ किया सु मन किया, कैसौं कीया नाँहि ॥५०७॥

मूँड मुँड़ावत दिन गए , अजहूँ न मिलिया राम ।
राम नाम कहु क्या करैं, जे मन किया के औरे काँम ॥५०८॥

स्वाँग पहिर सोरहा भया, खाया पीया षूँदि ।
जिहि सेरी साधू नीकले, सा तौ मेल्ही मूँदि ॥५०९॥

बैसनों भया तौ का भया, बूझा नहीं बबेक ।
छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक ॥५१०॥

तन कौं जोगी सब करैं, मन कों बिरला कोइ ।
सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ ॥५११॥

कबीर यहु तौ एक है, पड़दा दीया भेष ।
भरम करम सब दूरि करि, सबहीं माँहि अलेख ॥५१२॥

भरम न भागा जीव का, अनंतहि धरिया भेष ।
सतगुर परचे बाहिरा, अंतरि रह्या अलेख ॥५१३॥

जगत जहंदम राचिया, झूठे कुल की लाज ।
तन बिनसे कुल बिनसि है, गह्या न रॉम जिहाज ॥५१४॥

पष ले बूडी पृथमीं, झूठी कुल की लार ।
अलष बिसार्यौ भेष मैं, बूड़े काली धार ॥५१५॥

चतुराई हरि नाँ मिले, ए बाताँ की बात ।
एक निसप्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ ॥५१६॥

नवसत साजे काँमनी, तन मन रही सँजोइ ।
पीव कै मन भावै नहीं, पटम कीयें क्या होइ ॥५१७॥

जब लग पीव परचा नहीं, कन्याँ कँवारी जाँणि ।
हथलेवा हैसै लिया, मुसकल पड़ी पिछाँणि ॥५१८॥

कबीर हरि की भगति का, मन मैं परा उल्लास ।
मैंवासा भाजै नहीं, हूँण मतै निज दास ॥५१९॥

मैं वासा मोई किया, दुरिजिन काढ़े दूरि ।
राज पियारे रॉम का, नगर बस्या भरिपूरि ॥५२०॥

कबीर माला काठ की, मेल्ही मुगधि भुलाइ ।
सुमिरण की सोधी नहीं, जाँणै डीगरि घाली जाइ ॥५२१॥

माला फेरत जुग भया, पाय न मन का फेर ।
कर का मन का छाँड़ि दे , मन का मन का फेर ॥५२२॥

माला पहर्याँ कुछ नहीं बाम्हण भगत जाण ।
ब्याँह सराँधाँ कारटाँ उँभू वैसै ताणि ॥५२३॥

२५. कुसंगति कौ अंग

निरमल बूँद अकास की, पड़ि गई भोमि बिकार ।
मूल विनंठा माँनवी, बिन संगति भठछार ॥५२४॥

मूरिष संग न कीजिए , लोहा जलि न तिराइ ।
कदली सीप भुजगं मुषी, एक बूँद तिहुँ भाइ ॥५२५॥

हरिजन सेती रुसणाँ, संसारी सूँ हेत ।
ते नर कदे न नीपजे, ज्यूँ कालर का खेत ॥५२६॥

मारी मरूँ कुसंग की, केला काँठै बेरि ।
वो हालै वो चीरिये, साषित संग न बेरि ॥५२७॥

मेर नीसाँणी मीच की, कुसंगति ही काल ।
कबीर कहै रे प्राँणिया, बाँणी ब्रह्म सँभाल ॥५२८॥

माषी गुड़ मैं गड़ि रही, पंष रही लपटाइ ।
ताली पीटै सिरि धुनै, मीठे बोई माइ ॥५२९॥

ऊँचे कुल जानमियाँ, करणीं ऊँच न होइ ।
सोवन कलस सुरे भर्या, साधुँ निंद्या सोइ ॥५३०॥

कबीर केहने क्या बणैं, अणमिलता सौ संग ।
दीपक कै भावैं नहीं, जलि परैं पतंग ॥५३१॥

२६. संगति कौ अंग

देखा देखी पाकड़े, जाइ अपरचे छूटि ।
बिरला कोई ठाहरे सतगुर साँमी मूठि ॥५३२॥

देखा देखी भगति है, कदे न चढ़ई रंग ।
बिपति पढ़्या यूँ छाड़सी, ज्यूँ कंचुली तजत भवंग ॥५३३॥

करिए तौ करि जाँणिये, सारीपा सूं संग ।
लीर लीर लोई थई, तऊ न छाड़ै रंग ॥५३४॥

यहु मन दीजै तास कौं, सुठि सेवग भल सोइ ।
सिर ऊपरि आरास है, तऊ न दूजा होइ ॥५३५॥

पाँहण टाँकि न तोलिए , हाडि न कीजै वेह ।
माया राता मानवी, तिन सूँ किसा सनेह ॥५३६॥

कबीर तासूँ प्रीति करि , जो निरबाहै ओड़ि ।
बनिता बिबिध न राचिये, दोषत लागे षोड़ि ॥५३७॥

कबीर मन पंषी भया, जहाँ मन तहाँ उड़ि जाइ ।
जो जैसी संगति करे, सो तैसे फल खाइ ॥५३८॥

काजल केरी कोठढ़ी, तैसा यहु संसार ।
बलिहारी ता दास की, पैसि निकसणहार ॥५३९॥

२७. असाध कौ अंग

कबीर भेष अतीत का, करतूति करै अपराध ।
बाहरि दीसै साध गति, माँहैं महा असाध ॥५४०॥

उज्जल देखि न धीजिये, बग ज्यूँ माँडै ध्यान ।
धीरे बौठि चपेटसी, यूँ ले बूडैं ग्याँन ॥५४१॥

जेता मीठा बोलणाँ, तेता साध न जाँणि ।
पहली थाह दिखाइ करि, ऊँडै देसी आँणि ॥५४२॥

२८. साध कौ अंग

कबीर संगति साध की, कदे न निरफल होइ ।
चंदन होसी बाँवना, नींव न कहसी कोइ ॥५४३॥

कबीर संगति साध की, बेगि करीजै जाइ ।
दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताइ ॥५४४॥

मथुरा जावै द्वारिका, भावैं जावैं जगनाथ ।
साध संगति हरि भजति बिन, कछु न आवै हाथ ॥५४५॥

मेरे संगी दोइ जणाँ, एक वैष्णौं एक राँम ।
वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाँम ॥५४६॥

कबीरा बन बन में फिरा, कारणि आपणें राम ।
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काँम ॥५४७॥

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं ।
अंक भरे भारि भेंटिया, पाप सरीरौ जाँहिं ॥५४८॥

कबीर चंदन का बिड़ा, बैठ्या आक पलास।
आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास ॥५४९॥

कबीरा खाई कोट की, पांणी पीवे न कोइ।
आइ मिलै जब गंग मैं, तब गंगोदिक होइ ॥५५०॥

जाँनि बूझि साचहि तजै, करैं झूठ सूँ नेहु।
ताकी संगति राम जी, सुपिनै ही जिनि देहु ॥५५१॥

कबीर तास मिलाइ, जास हियाली तूँ बसै।
वहि तर बेगि उठाइ, नित का गंजन को सहै ॥५५२॥

केती लहरि समंद की, कत उपजै कत जाइ।
बलिहारी ता दास की, उलटी माँहि समाइ ॥५५३॥

काजल केरी कोठड़ी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, जे रहै राँम की ओट ॥५५४॥

भगति हजारी कपड़ा, तामें मल न समाइ।
साषित काली काँली, भावै तहाँ बिछाइ ॥५५५॥

पंच बल धिया फिरि कड़ी, ऊझड़ ऊझड़ि जाइ।
बलिहारी ता दास की, बवकि अणाँवै ठाइ ॥५५६॥

काजल केरी कोठड़ी, तैंसा यह संसार।
बलिहारी ता दास की, पैसि जु निकसण हार ॥५५७॥

२९. साध साषीभूत कौ अंग

निरबैरी निहकाँमता, साँई सेती नेह।
विषिया सूँ न्यारा रहै, संतहि का अँग एह ॥५५८॥

सन्त न छाड़ै संतई, जे कोटिक मिलै असंत।
चंदन भुवंगा बैठिया, तऊ शीतलता न तजंत ॥५५९॥

कबीर हरि का भाँवता, दूरैं थैं दीसंत।
तन षीणा मन उनमनाँ, जग रूठड़ा फिरंत ॥५६०॥

कबीर हरि का भावता, झीणाँ पंजर तास।
रैणि न आवै नींदड़ी, अंगि न चढ़ई मास ॥५६१॥

अणरता सुख सोवणाँ, रातै नींद न आइ ।
ज्यूँ जल टूटै मंछली यूँ बेलंत बिहाइ ॥५६२॥

जिन्य कुछ जाँण्या नहीं तिन्ह, सुख नींदड़ी बिहाइ ।
मैर अबूझी बूझिया, पूरी पड़ी बलाइ ॥५६३॥

जाँण भगत का नित मरण, अणजाँणे का राज ।
सर अपसर समझै नहीं, पेट भरण सूँ काज ॥५६४॥

जिहि घटिजाँण बिनाँण है, तिहि घटि आवटणाँ घणा ।
बिन षंडै संग्राम है नित उठि मन सौं झूझणाँ ॥५६५॥

राम बियोगी तन बिकल, ताहि न चीन्है कोइ ।
तंबोली के पान ज्यूं, दिन-दिन पीला होइ ॥५६६॥

पीलक दौड़ी साँइयाँ, लोग कहै पिंड रोग ।
छाँनै लंघण नित करै, राँम पियारे जोग ॥५६७॥

काम मिलावे राम कूँ, जे कोई जाँणै राषि ।
कबीर बिचारा क्या करै, जाकि सुखदेव बोले साषि ॥५६८॥

काँमणि अंग बिरकत भया, रत भया हरि नाँहि ।
साषी गोरखनाथ ज्यूँ, अमर भए कलि माँहि ॥५६९॥

जदि विषै पियारी प्रीति सूँ, तब अंतर हरि नाँहि ।
जब अंतर हरि जी बसै, तब विषया सूं चित नाँहि ॥५७०॥

जिहि घट मैं संसौ बसै, तिहिं घटि राम न जोइ ।
राम सनेही दास विचि, तिणाँ न संचर होइ ॥५७१॥

स्वारथ को सबको सगा, सब सगलाही जाँणि ।
बिन स्वारथ आदर करै, सो हरि की प्रीति पिछाँणी ॥५७२॥

जिहिं हिरदै हरि आइया, सो क्यूँ छाँनाँ होइ ।
जतन-जतन करि दाबिये, तऊ उजाला सोइ ॥५७३॥

फाटै दीदै में फिरौं, नजिर न आवै कोइ ।
जिहि घटि मेरा साँइयाँ, सो क्यूँ छाना होइ ॥५७४॥

सब घटि मेरा साँइयाँ, सूनी सेज न कोइ ।
भाग तिन्हौ का हे सखी, जिहि घटि परगड होइ ॥५७५॥

पावक रूपी राँम है, घटि घटि रह्या समाइ ।
चित चकमक लागै नहीं, ताथै धुँवाँ ह्वै ह्वै जाइ ॥५७६॥

कबीरा खालिक जागिया, और न जागै कोइ ।
कै जागै बिषई विष भर्‌या, कै दास बदंगी होइ ॥५७७॥

कबीर चाल्या जाइ था, आगैं मिल्या खुदाइ ।
मीराँ मुझ सौं यौं कह्या, किनि फुरमाई गाइ ॥५७८॥

३०. साध महिमाँ कौ अंग

चंदन की कुटकी भली, नाँ बँबूल अबराँउँ ।
बैश्नो की छपरी भली, नाँ साषत का बड गाँउ ॥५७९॥

पुरपाटण सूबस बसै, आनँद ठाये ठाँइ ।
राँम सनेही बाहिरा, ऊजँड़ मेरे भाँइ ॥५८०॥

जिहिं घरि साध न पूजिये, हरि की सेवा नाँहिं ।
ते घर मड़हट सारषे, भूत बसै तिन माँहिं ॥५८१॥

हैं गै गैंवर सघन घन, छत्र धजा फहराइ ।
ता सुख थैं भिष्या भली, हरि सुमिरत दिन जाइ ॥५८२॥

हैं गै गैवर सघन धन, छत्रपती की नारि ।
तास पटंतर नाँ तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥५८३॥

क्यूँ नृप नारी नींदये, क्यूँ पनिहारी कौं माँन ।
वामाँग सँवारै पीव कौं, नित उठि सुमिरै राँम ॥५८४॥

कबीर धनि ते सुंदरी, जिनि जाया बैसनौं पूत ।
राँम सुमिरि निरभैं हुवा, सब जग गया अऊत ॥५८५॥

कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास ।
जिहिं कुल दास न उपजै, सो कुल आक पलास ॥५८६॥

साषत बाँभण मति मिलै, बैसनौं मिलै चंडाल ।
अंक माल दे भेटिये, माँनों मिले गोपाल ॥५८७॥

राँम जपत दालिद भला, टूटी घर की छाँनि ।
ऊँचे मंदिर जालि दे, जहाँ भगति न सारँगपाँनि ॥५८८॥

कबीर भया है केतकी, भवर भये सब दास ।
जहाँ जहाँ भगति कबीर की, तहाँ तहाँ राँम निवास ॥५८९॥

३१. मधि कौ अंग

कबीर मधि अंग जेको रहै, तौ तिरत न लागै बार।
दुइ दुइ अंग सूँ लाग करि, डूबत है संसार ॥५९०॥

कबीर दुबिधा दूरि करि, एक अंग ह्वै लागि।
यहु सीतल बहु तपति है, दोऊ कहिये आगि ॥५९१॥

अनल आकाँसाँ घर किया, मधि निरंतर बास।
बसुधा ब्यौम बिरकत रहै, बिनाठा हर बिसवास ॥५९२॥

बासुरि गमि न रैंणि गमि, नाँ सुपनैं तरगंम।
कबीर तहाँ बिलंबिया, जहाँ छाहड़ी न घंम ॥५९३॥

जिहि पैडै पंडित गए, दुनिया परी बहीर।
औघट घाटी गुर कही, तिहिं चढ़ि रह्या कबीर ॥५९४॥

श्रग नृकथैं हूँ रह्या, सतगुर के प्रसादि।
चरन कँवल की मौज मैं, रहिस्यूँ अंतिरु आदि ॥५९५॥

हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ ॥५९६॥

दुखिया मूवा दुख कों, सुखिया सुख कौं झूरि।
सदा आनंदी राम के, जिनि सुख-दुख मेल्हे दूरि ॥५९७॥

कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ।
राम सनेही यूँ मिले, दुन्यूँ बरन गवाइ ॥५९८॥

काबा फिर कासी भया, राँम भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीभ ॥५९९॥

धरती अरु असमान बिचि, दोइ तूँबड़ा अबध।
षट दरसन संसै पड़्या, अरू चौरासी सिध ॥६००॥

३२. सार ग्राही कौ अंग

षीर रूप हरि नाँव है, नीर आन ब्यौहार।
हंस रूप कोइ साध है, तत का जांनणहार ॥६०१॥

कबीर साषत को नहीं, सबै बैश्नों जाँणि।
जा मुखि राम न उचरै, ताही तन की हाँणि ॥६०२॥

कबीर औगुँण ना गहैं, गुँण ही कौ ले बीनि ।
घट घट महु के मधुप ज्यूँ , पर आत्म ले चीन्हि ॥६०३॥

बसुधा बन बहु भाँति है, फूल्यौ फल्यौ अगाध ।
मिष्ट सुबास कबीर गहि, बिषम कहै किहि साध ॥६०४॥

सार संग्रह सूप ज्यूँ , त्यागै फटकि असार ।
कबीर हरि हरि नाँव ले, पसरै नहीं बिकार ॥६०५॥

कबीर सब घटि आत्मा, सिरजी सिरजनहार ।
राम कहै सो राम में, रमिता ब्रह्म बिचारि ॥६०६॥

तत तिलक तिहु लोक में, राम नाम निजि सार ।
जन कबीर मसतिकि देया, सोभा अधिक अपार ॥६०७॥

३३. बिचार कौ अंग

राम नाम सब को कहै, कहिबे बहुत बिचार ।
सोई राम सती कहै, सोई कौतिक हार ॥६०८॥

आगि कह्याँ दाझै नहीं, जे नहीं चंपै पाइ ।
जब लग लग भेद न जाँणिये, राम कह्या तौ काइ ॥६०९॥

कबीर सोचि बिचारिया, दूजा कोई नाँहि ।
आपा पर जब चींन्हिया, तब उलटि समाना माँहि ॥६१०॥

कबीर पाणी केरा पूतला, राख्या पवन सँवारि ।
नाँनाँ बाँणी बोलिया, जोति धरी करतारि ॥६११॥

नौ मण सूत अलूझिया, कबीर घर घर बारि ।
तिनि सुलझाया बापुड़े, जिनि जाणीं भगति मुरारि ॥६१२॥

आधी साषी सिरि कटैं, जोर बिचारी जाइ ।
मनि परतीत न ऊपजे, तौ राति दिवस मिलि गाइ ॥६१३॥

सोई अषिर सोई बयन, जन जू जू बाचवंत ।
कोई एक मेलै लवणि, अमीं रसाइण हुँत ॥६१४॥

हरि मोत्याँ को माल है, पोई काचै तागि ।
जतन करी झंटा घँणा, टूटेगी कहूँ लागि ॥६१५॥

मन नही छाड़ै बिषै, बिषै न छाड़ै मन कौं ।
इनकौं इहै सुभाव, पूरि लागी जुग जन कौं ॥६१६॥

खंडित मूल बिनास कहौ किम बिगतह कीजै ।
ज्यूँ जल में प्रतिब्यंब, त्यूँ सकल रामहिं जांणीजैं ॥६१७॥

सो मन सो तन सो बिषे, सो त्रिभवन पति कहूँ कस ।
कहै कबीर ब्यंदहु नरा, ज्यूँ जल पूर्‌या सकल रस ॥६१८॥

कबीर भूल दंग में लोग कहैं यहु भूल ।
कै रमइयौं वाट बतइसी, कै भूलत भूलैं भूल ॥६१९॥

३४. उपदेश कौ अंग

हरि जी यहै बिचारिया, साषी कहौ कबीर ।
भौसागर मैं जीव है, जे कोइ पकड़े तीर ॥६२०॥

कली काल ततकाल है, बुरा करौ जिनि कोइ ।
अनबावैं लोहा दाहिणैं बोबै सु लुणता होइ ॥६२१॥

कबीर संसा जीव मैं, कोई न कहै समझाइ ।
बिधि बिधि बाणीं बोलता, सो कत गया बिलाइ ॥६२२॥

कबीर संसा दूरि करि , जाँमण मरण भरंम ।
पंचतत तत्तहि मिले, सुरति समाना मंन ॥६२३॥

ग्रिही तौ च्यंता धणीं, बैरागी तौ भीष ।
दुहुँ कत्याँ बिचि जीव है, दौ हमैं संतौं सीष ॥६२४॥

बैरागी बिरकत भला, गिरहीं चित्त उदार ।
दुहै चूकाँ रीता पड़ै, ताकूँ वार न पार ॥६२५॥

जैसी उपजै पेड़ मूँ , तैसी निबहै ओरि ।
पैका पैका जोड़ताँ, जुड़िसा लाष करोड़ि ॥६२६॥

कबीर हरि के नाँव सूँ , प्रीति रहै इकतर ।
तौ मुख तैं मोती झड़ै, हीरे अंत न पार ॥६२७॥

ऐसी वाँणी बोलिये, मन का आपा खोइ ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होइ ॥६२८॥

कोइ एक राखै सावधान, चेतनि पहरै जागि ।
बस्तन बासन सूँ खिसै, चोर न सकई लागि ॥६२९॥

जीव को समझै नहीं, मुवा न कहै संदेस।
जाको तन मन सौं परचा नहीं, ताकौ कौण धरम उपदेस ॥६३०॥

३५. बेसास कौ अंग

जिनि नर हरि जठराँह, उदिकै थैं षंड प्रगट कियौ।
सिरजे श्रवण कर चरन, जीव जीभ मुख तास दीयौ ॥६३१॥

उरध पाव अरध सीस, बीस पषां इम रषियौ।
अंन पान जहाँ जरै, तहाँ तै अनल न चषियौ ॥६३२॥

इहिं भांति भयानक उद्र में, कबहू छंछरै।
कृसन कृपाल कबीर कहि, इम प्रतिपालन क्यों करै ॥६३३॥

भूखा-भूखा क्या करे, कहा सुनावै लोग।
भांडा घड़ि जिनि मुख दिया, सोई पूरण जोग ॥६३४॥

रचनहार कूँ चीन्हि लै, खैवे कूँ कहा रोइ।
दिल मंदिर मैं पैसि करि, तांणि पछेवड़ा सोइ ॥६३५॥

राम नाम करि बोहड़ा, बांही बीज अघाइ।
अंति कालि सूका पड़ै, तौ निरफल कदे न जाइ ॥६३६॥

च्यंतामणि मन में बसै, सोई चित मैं आंणि।
बिन च्यंता च्यंता करै, इहै प्रभू की बांणी ॥६३७॥

कबीर का तूँ चितवै, का तेरा च्यंत्या होइ।
अणच्यंत्या हरिजी करै, जो तोहि च्यंत न होइ ॥६३८॥

करम करीमां लिखि रह्या, अब कछू लिख्या न जाइ।
मासा घट न तिल बधै, जो कोटिक करै उपाइ ॥६३९॥

जाकौ जेता निरमया, ताकौं तेता होइ।
रती घटै न तिल बधै, जौ सिर कूटै कोइ ॥६४०॥

च्यंता न करि अच्यंत रहु, सांई है संग्रथ।
पसु पंषरू जीव जंत, तिनको गांडि किसा ग्रंथ ॥६४१॥

संत न बांधै गाँठड़ी, पेट समाता लेइ।
सांई सूं सनमुख रहैं, जहाँ माँगै तहाँ देइ ॥६४२॥

राँम राँम सूँ दिल मिली, जन हम पड़ी बिराइ।
मोहि भरोसा इष्ट का, बदा नरकि न जाइ ॥६४३॥

कबीर तूँ काहे डरै, सिर परि हरि का हाथ ।
हस्ती चढ़ि नही डोलिये, कूकर भुसैं जु लाष ॥६४४॥

मीठा खाँण मधूकरी, भाँति भाँति कौ नाज ।
दावा किसही का नहीं, बिन बिलाइति बड़ राज ॥६४५॥

मौनि महातम प्रेम रस, गरवा तण गुण नेह ।
ए सबहीं अह लागया, जबहीं कह्या कुछ देह ॥६४६॥

मांगण मरण समान है, बिरला वंचै कोइ ।
कहै कबीर रघुनाथ सूँ , मतिर मँगावै मोहि ॥६४७॥

पांडल पंजर मन भवर , अरथ अनूपम बास ।
रौंम नाँम सींच्या अँमी, फल लागा वेसास ॥६४८॥

मेर मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्म बिसास ।
अब मेरे दूजा को नहीं, एक तुम्हारी आस ॥६४९॥

जाकी दिल में हरि बसै, सो नर कलपै काँइ ।
एक लहरि संमद की, दुख दलिद्र सब जाँइ ॥६५०॥

पद गाये लैलीन ह्वै, कटी न संसै पास ।
सबै पिछोड़े थोथरे, एक बिनाँ बेसास ॥६५१॥

गावण हीं मैं रोज है, रोवण हीं में राग ।
इक वैरागी ग्रिह मैं, इक गृही मैं वैराग ॥६५२॥

गाया तिनि पाया नहीं, अणगाँयाँ थैं दूरि ।
जिनि गाया बिसवास सूँ , तिन रौंम रह्या भरिपूरि ॥६५३॥

करीम कबीर जु विह लिख्या, नरसिर भाग अभाग ।
जेहूँ च्यंता चितवैं, तऊ स आगै आग ॥६५४॥

हसती चढ़िया ज्ञान कै, सहज दुलीचा डारि ।
स्वान रूप संसार है, पड़्या, भुसौ झषि माँरि ॥६५५॥

कबीर मरौं पै मांगौं नहीं, अपणै तन कै काज ।
परमारथ कै कारणै, मोहिं मांगत न आवै लाज ॥६५६॥

भगत भरोसै एक कै, निधरक नीची दीठि ।
तिनकू करम न लागसी, राम ठकोरी पीठि ॥६५७॥

३६. पीव पिछाँणन कौ अंग

संपटि माँहि समाइया, सो साहिब नहीं होइ ।
सफल मांड मैं रमि रह्या, साहिब कहिए सोइ ॥६५८॥

रहै निराला माँड थै, सकल माँड ता माँहि ।
कबीर सेवै तास कूँ , दूजा कोई नाँहि ॥६५९॥

भोलै भूली खसम कै, बहुत किया बिभचार ।
सतगुर गुरू बताइया, पूरिबला भरतार ॥६६०॥

जाकै मह माथा नहीं, नहीं रूपक रूप ।
पुहुप बास थैं पतला, ऐसा तत अनूप ॥६६१॥

चत्र भुजा कै ध्यान मैं, ब्रिजबासी सब संत ।
कबीर मगन ता रूप मैं, जाकै भुजा अनंत ॥६६२॥

३७. बिर्कताई कौ अंग

मेरे मन मैं पड़ि गई, ऐसी एक दरार ।
फटक पषाँण ज्यूँ , मिल्या न दूजी बार ॥६६३॥

मन फाटा बाइक बुरै, मिटी सगाई साक ।
जौ परि दूध तिवास का, ऊकटि हूवा आक ॥६६४॥

चंदन माफों गुण करैं, जैसे चोली पंन ।
दोइ जनाँ भागां न मिलै, मुकताहल अरु मंन ॥६६५॥

पासि बिनंठा कपड़ा, कदे सुरांग न होइ ।
कबीर त्याग्या ग्यान करि, कनक कामनी दोइ ॥६६६॥

चित चेतनि मैं गरक ह्वै, चेत्य न देखैं मत ।
कत कत की सालि पाड़िये, गल बल सहर अनंत ॥६६७॥

जाता है सो जाँण दे, तेरी दसा न जाइ ।
खेवटिया की नाव ज्यूँ घणें मिलैंगे आइ ॥६६८॥

नीर पिलावत क्या फिरै, सायर घर घर बारि ।
जो त्रिषावंत होइगा, तो पीवेगा झष मारि ॥६६९॥

सत गंठी कोपीन है, साध न मानै संक।
राँम अमलि माता रहै, गिणैं इंद्र कौ रंक ॥६७०॥

दावै दाझण होत है, निरदावै निरसंक।
जे नर निरदावै रहैं, ते गणै इंद्र कौ रंक ॥६७१॥

कबीर सब जग हंडिया, मंदिल कंधि चढ़ाइ।
हरि बिन अपनाँ को नही, देखे ठोकि बजाइ ॥६७२॥

मोती भागाँ बीधताँ, मन मैं बस्या कबोल।
बहुत सयानाँ पचि गया, पड़ि गइ गाठि गढ़ोल ॥६७३॥

मोती पीवत बीगस्या, सानों पाथर आइ राइ।
साजन मेरी नीकल्या, जाँमि बटाऊँ जाइ ॥६७४॥

बाजण देह बजंतणी, कुल जंतड़ी न बेड़ि।
तुझै पराई क्या पड़ी, तूँ आपनी निबोड़ि ॥६७५॥

३८. सम्रथाई कौ अंग

नाँ कुछ किया न करि सक्या, नाँ करणे जोग सरीर।
जे कछु किया सु हरि किया, ताथै भया कबीर कबीर ॥६७६॥

कबीर किया कछू न होत है, अनकीया सब होइ।
जे किया कछु होत है, करता औरे कोइ ॥६७७॥

जिसहि न कोई तिसहि तूँ , जिस तूँ तिस सब कोइ।
दरिगह तेरी साँईयाँ, नाँव हरू मन होइ ॥६७८॥

एक खड़े ही लहैं, और खड़ा बिलगाइ।
साई मेरा सुलषना, सूता देइ जगाइ ॥६७९॥

सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ ॥६८०॥

अबरन कौं का बरनिये, मोपै लख्या न जाइ।
अपना बाना बाहिया, कहि कहि थाके माइ ॥६८१॥

झल बाँबै झल दाँहिनैं, झलहिं माँहि ब्यौहार।
आगैं पीछै झलमई, राखैं सिरजनहार ॥६८२॥

साँई मेरा बाँणियाँ, सहजि करै ब्यौपार।
बिन डाँडी बिन पालड़ै तोलै सब संसार ॥६८३॥

कबीर वार्‌या नांव परि , कीया राई लूँण।
जिसहि चलावै पंथ तूँ, तिसहि भुलावै कौंण ॥६८४॥

कबीर करणीं क्या करै, जे राँम न कर सहाइ ।
जिहिं जिहिं डाली पग धरै, सोई नवि नवि जाइ ॥६८५॥

जदि का माइ जनमियाँ, कहूँ न पाया सुख ।
डाली डाली मैं फिरौं, पातौं पातौं दुख ॥६८६॥

सांई सूँ सब होत है, बंदे थै कुछ नांहिं ।
राई थैं परबत करै, परबत राई मांहिं ॥६८७॥

रैणाँ दूरां बिछोहियां, रहु रे संषम झूरि ।
देवल देवलि धाहिणी, देसी अंगे सूर ॥६८८॥

३९. कुसबद कौ अंग

अणी सुहेली सेल की, पड़ताँ लेइ उसास ।
चोट सहारै सबद की, तास गुरू मैं दास ॥६८९॥

खूँदन तो धरती सहै, बाढ़ सहै बनराइ ।
कुसबद तो हरिजन सहै, दूजै सह्या न जाइ ॥६९०॥

सीतलता तब जाँणियें, समिता रहै समाइ ।
पष छाँड़ै निरपष रहै, सबद न दूष्या जाइ ॥६९१॥

कबीर सीतलता भई, पाया ब्रह्म गियान ।
जिहिं बैंसंदर जग जल्या, सो मेरे उदिक समान ॥६९२॥

सहज तराजू आँणि करि, सब रस देख्या तोलि ।
सब रस माँहै जीभ रस, जे कोइ जाँणै बोलि ॥६९३॥

४०. सबद कौ अंग

कबीर सबद सरीर मैं, बिनि गुण बाजै तंति ।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, ताथैं छूटि भरंति ॥६९४॥

सती संतोषी सावधान, सबद भेद सुबिचार ।
सतगुर के प्रसाद थैं, सहज सील मत सार ॥६९५॥

सतगुर ऐसा चाहिए , जैसा सिकलीगर होइ ।
सबद मसकला फेरि करि, देह द्रपन करै सोइ ॥६९६॥

सतगुर साचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही मैं मिलि गया, पड़्या कलेजे छेक ॥६९७॥

हरि रस जे जन बेधिया, सतगुण सी गणि नाहि ।
लागी चोट सरीर में, करक करेजे माँहि ॥६९८॥

ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण साभलूँ , त्यूँ त्यूँ लागै तीर ।
साँठी साँठी झड़ि पड़ी, झलका रह्या सरीर ॥६९९॥

ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण साभलौं, त्यूँ त्यूँ लागै तीर ।
लागैं थै भागा नहीं, साहणहार कबीर ॥७००॥

सारा बहुत पुकारिया, पीड़ पुकारै और ।
लागी चोट सबद की, रह्या कबीरा ठौर ॥७०१॥

४१. जीवन मृतक कौ अंग

जीवन मृतक ह्वै रहै, तजै जगत की आस ।
तब हरि सेवा आपण करै, मति दुख पावै दास ॥७०२॥

कबीर मन मृतक भया, दुरबल भया सरीर ।
तब पंडे लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर ॥७०३॥

कबीर मरि मड़हट रह्या, तब कोई बुझै सार ।
हरि आदर आगै लिया, ज्यूँ गउ बछ की लार ॥७०४॥

घर जालौं घर उबरे , घर राखौं घर जाइ ।
एक अचंभा देखिया, मड़ा काल कौं खाइ ॥७०५॥

मरताँ मरताँ जग मुवा, औसर मुवा न कोइ ।
कबीर ऐसैं मरि मुवा, ज्यूं बहुरि न मरना होइ ॥७०६॥

बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार ।
एक कबीरा ना मुवा, जिनि के राम अधार ॥७०७॥

मन मार्‌या ममिता मुई, अहं गई सब छूटि ।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही विभूति ॥७०८॥

जीवन थैं मरिबौ भलौ, जो मरि जानैं कोइ ।
मरनैं पहली जे मरैं, तो कलि अजरावर होइ ॥७०९॥

खरी कसौटी राम की, खोटा टिकै न कोइ ।
राम कसौटी सो टिकै, जौ जीवन मृतक होइ ॥७१०॥

आपा मेट्या हरि मिलै, हरि मेंट्या सब जाइ ।
अकथ कहाणीं प्रेम की, कह्या न को पत्याइ ॥७११॥

निगु साँवाँ वहि जायगा, जाकै थाघी नहीं कोइ ।
दीन गरीबी बंदिगी, करता होइ सु होइ ॥७१२॥

दीन गरीबी दीन कौं, दूँदर कौं अभिमान ।
दुंदुर दिल विष सूँ भरी, दीन गरीबी राम ॥७१३॥

कबीर चेरा संत का, दासनि का परदास ।
कबीर ऐसैं ह्वै रहैं, ज्यूँ पाऊँ तलि घास ॥७१४॥

रोड़ा ह्वै रहो बाट का, तजि पादंड अभिमान ।
ऐसा जे जन ह्वै रहैं, ताहि मिलै भगवान ॥७१५॥

जिन पांऊँ सैं कतरी हांठत देत बदेस ।
तिन पांऊँ तिथि पाकड़ौ, आगण मथा बदेस ॥७१६॥

कबीर नवे स आपको, पर कौं नवे न कोइ ।
धालि तराजू तोलिये, नवे स भारी होइ ॥७१७॥

बुरा बुरा सब को कहै, बुरा न दीसे कोइ ।
जे दिल खोजौ आपणो, तो बुरा न दीसे कोइ ॥७१८॥

रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देह ।
हरिजन ऐसा चाहिए , जिसी जिंमीं की खेह ॥७१९॥

खेह भई तौ क्या भया, उड़ि उड़ि लागे अंग ।
हरिजन ऐसा चाहिए , पाँणीं जेसा रंग ७२०॥

पाणीं भया तो क्या भया, ताता सीता होइ ।
हरिजन ऐसा चाहिए , जेसा हरि ही होइ ॥७२१॥

हरि भया, तो क्या भया, जैसों सब कुछ होइ ।
हरिजन ऐसा चाहिए , हरि भजि निरमल होइ ॥७२२॥

४२. चित कपटी कौ अंग

कबीर तहाँ जाइए , जहाँ कपट का हेत ।
जालूँ कली कनीर की, तन रातो मन सेत ॥७२३॥

संसारी साषत भला, कँवारी कै भाइ ।
दुराचारी वैश्नों बुरा, हरिजन तहाँ न जाइ ॥७२४॥

निरमल हरि का नाव सों कै निरमल सुध भाइ ।
के ले दूणी कलिमा, भावे सों मण साबण लाइ ॥७२५॥

नवणि नयौ तौ का भयौ, चित्त न सुधौं ज्यौंह ।
पारधिया दूणा नवै, मिघ्राटक ताह ॥७२६॥

४३. गुरुसिष हेरा कौ अंग

ऐसा कोई ना मिले, हम कौं दे उपदेस ।
भौसागर मैं डूबता, कर गहि काढ़े केस ॥७२७॥

ऐसा कोई ना मिले, हम को लेइ पिछानि ।
अपना करि किरपा करे, ले उतारै मैदानि ॥७२८॥

ऐसा कोई ना मिले, राम भगति का गीत ।
तनमन सौपे मृग ज्यूँ , सुने बधिक का गीत ॥७२९॥

ऐसा कोई ना मिले, अपना घर देइ जराइ ।
पंचूँ लरिका पटिक करि , रहै राम ल्यौ लाइ ॥७३०॥

ऐसा कोई ना मिले, जासौ रहिये लागि ।
सब जग जलता देखिये, अपणीं अपणीं आगि ॥७३१॥

ऐसा कोई ना मिले, जासूँ कहूँ निसंक ।
जासूँ हिरदे की कहूँ, सो फिरि माडै कंक ॥७३२॥

ऐसा कोई ना मिले, सब बिधि देइ बताइ ।
सुनि मंडल मैं पुरिष एक , ताहि रहै ल्यौ लाइ ॥७३३॥

हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाँह ।
ऐसा कोई ना मिले, पकड़ि छुड़ावै बाँह ॥७३४॥

तीनि सनेही बहु मिले, चौथे मिले न कोइ ।
सबे पियारे राम के , बैठे परबसि होइ ॥७३५॥

माया मिले महोर्बती, कूड़े आखै बेउ ।
कोई घाइल बेध्या ना मिलै, साई हंदा सैण ॥७३६॥

सारा सूरा बहु मिलें, घाइला मिले न कोइ ।
घाइल ही घाइल मिले, तब राम भगति दिढ़ होइ ॥७३७॥

प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोइ ।
प्रेमी कौं प्रेमी मिलै, तब सब विष अमृत होइ ॥७३८॥

हम घर जाल्या आपणाँ, लिया मुराड़ा हाथि ।
अब घर जालौं तास का , जे चलै हमारे साथि ॥७३९॥

ऐसा कोई ना मिले, बूझै सैन सुजान।
ढोल बजंता ना सुणौं, सुरवि बिहूणा कान ॥७४०॥

जाणै ईछूँ क्या नहीं, बूझि न कीया गौन।
भूलौ भूल्या मिल्या, पंथ बतावै कौन ॥७४१॥

कबीर जानींदा बूझिया, मारग दिया बताइ।
चलता चलता तहाँ गया, जहाँ निरंजन राइ ॥७४२॥

४४. हेत प्रीति सनेह कौ अंग

कमोदनी जलहरि बसै, चंदा बसै अकासि।
जो जाही का भावता, सो ताही कै पास ॥७४३॥

कबीर गुर बसै बनारसी, सिष समंदा तीर।
बिसर्‌या नहीं बीसरै, जे गुंण होइ सरीर ॥७४४॥

जो है जाका भावता, जदि तदि मिलसी आइ।
जाकी तन मन सौंपिया, सो कबहूँ छाँड़ि न जाइ ॥७४५॥

स्वामी सेवक एक मत, मन ही मैं मिलि जाइ।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन कै भाइ ॥७४६॥

४५. सूरा तन कौ अंग

काइर हुवाँ न छूटिये, कछु सूरा तन साहि।
भरम भलका दूरि करि , सुमिरण सेल सँबाहि ॥७४७॥

षूँणै पड़्या न छूटियो, सुणि रे जीव अबूझ।
कबीर मरि मैदान मैं, करि इंद्रयाँ सूँ झूझ ॥७४८॥

कबीर सोई सूरिवाँ, मन सूँ माँडै झूझ।
पंच पयादा पाड़ि ले, दूरि करै सब दूज ॥७४९॥

सूरा झूझै गिरदा सूँ , इक दिसि सूर न होइ।
कबीर यौं बिना सूरिवाँ, भला न कहिसी कोइ ॥७५०॥

कबीर आरणि पैसि करि, पीछैं रहै सु सूर।
साँई सूँ साचा भया, रहसी सदा हजूर ॥७५१॥

गगन दमाँमाँ बाजिया, पड़्या निसानै घाव।
खेत बुहार्‌या सूरिवैं, मुझ मरणे का चाव ॥७५२॥

कबीर मेरै संसा को नहीं, हरि सूँ लागा हेत।
काम क्रोध सूँ झूझणाँ, चौड़े माँड्या खेत ॥७५३॥

सूरै सार सँवाहिया, पहर्‌या सहज संजोग।
अब कै ग्याँन गयंद चढ़ि, खेत पड़न का जोग ॥७५४॥

सूरा तबही परषिये, लडै धणीं कै हेत।
पुरिजा पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत ॥७५५॥

खेत न छाड़ै सूरवाँ, झूझै द्वै दल माँहि।
आसा जीवन मरण की, मन मैं आँणैं नाँहि ॥७५६॥

अब तौ झूझ्याँही वणौं, मुढ़ि चाल्या घर दूरि।
सिर साहिब कौ सौंपता, सोच न कीजै सूरि ॥७५७॥

अब तौ ऐसी ह्वै पड़ी, मनकारु चित कीन्ह।
मरनै कहा डराइये, हाथि स्यँधौरा लीन्ह ॥७५८॥

जिस मरनै थैं जग डरै, सो मेरे आनंद।
कब मारिहूँ कब देखिहूँ , पूरन परमाँनंद ॥७५९॥

कायर बहुत पमाँवहीं, बहकि न बोलै सूर।
काँम पड्याँ हीं जाँणिहै, किसके मुख परि नूर ॥७६०॥

जाइ पूछौ उस घाइलै, दिवस पीड़ निस जाग।
बाँहणहारा जाणिहै, कै जाँणै जिस लाग ॥७६१॥

घाइल घूँमै गहि भर्‌या, राख्या रहै न ओट।
जतन कियाँ जावै नहीं, बणीं मरम की चोट ॥७६२॥

ऊँचा विरष अकासि फल, पंषी मूए झूरि।
बहुत सयाँने पचि रहे, फल निरमल परि दूरि ॥७६३॥

दूरि भया तौ का भया, सिर दे नेड़ा होइ।
जब लग सिर सौंपै नहीं, कारिज सिधि न होइ ॥७६४॥

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाँहिं।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसे घर माँहिं ॥७६५॥

कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस उतारि पग तलि धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद ॥७६६॥

प्रेम न खेती नींपजै, प्रेम न हाट बिकाइ।
राजा परजा जिस रुचें, सिर दे सो ले जाइ ॥७६७॥

सीस काटि पासंग दिया, जीव सरभरि लीन्ह।
जाहि भावे सो आइ ल्यौ, प्रेम आट हँम कीन्ह ॥७६८॥

सूरै सीस उतारिया, छाड़ी तन की आस।
आगै थैं हरि मुल किया, आवत देख्या दास ॥७६९॥

भगति दुहेली राँम की, नहि कायर का काम।
सीस उतारै हाथि करि , सो लेसी हरि नाम ॥७७०॥

भगति दुहेली राँम की, जैसि खाड़े की धार।
जे डोलै तौ कटि पड़ै, नहीं तौ उतरै पार ॥७७१॥

भगति दुहेली राँम की, जैसी अगनि की झाल।
डाकि पड़े ते ऊबरे, दाधे कौतिगहार ॥७७२॥

कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चाढ़ि असवार।
ग्याँन षड़ग गहि काल सिरि , भली मचाई मार ॥७७३॥

कबीर हीरा वणजिया, महँगे मोल अपार।
हाड़ गला माटी गली, सिर साटै ब्यौहार ॥७७४॥

जेते तारे रैणि के, तेते बैरी मुझ।
धड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसारौं तुझ ॥७७५॥

जो हार्‌या तौ हरि सवां, जे जीत्या तो डाव।
पारब्रह्म कूँ सेवता, जे सिर जाइ त जाव ॥७७६॥

सिर माटै हरि सेविए , छाड़ि जीव की बाँणि।
जे सिर दीवा हरि मिलै, तब लगि हाँणि न जाणि ॥७७७॥

टूटी बरत आकास थैं, कोइ न सकै झड़ झेल।
साध सती अरु सूर का, अँणी ऊपिला खेल ॥७७८॥

सती पुकारै सलि चढ़ी, सुनि रे मीत मसाँन।
लोग बटाऊ चलि गए , हम तुझ रहे निदान ॥७७९॥

सती बिचारी सत किया, काठौं सेज बिछाइ।
ले सूती पिव आपणा, चहुँ दिसि अगनि लगाइ ॥७८०॥

सती सूरा तन साहि करि, तन मन कीया घाँण ।
दिया महौला पीव कूँ , तब मड़हट करै बषाँण ॥७८१॥

सती जलन कूँ नीकली, पीव का सुमरि सनेह ।
सबद सुनत जीव निकल्या, भूलि गई सब देह ॥७८२॥

सती जलन कूँ नीकली, चित धरि एकबमेख ।
तन मन सौंप्या पीव कूँ , तब अंतर रही न रेख ॥७८३॥

हौं तोहि पूछौं हे सखी, जीवत क्यूँ न मराइ ।
मूँवा पीछैं सत करै, जीवत क्यूँ न कराइ ॥७८४॥

कबीर प्रगट राम कहि, छाँनै राँम न गाइ ।
फूस कौ जोड़ा दूरि करि , ज्यूँ बहुरि लागै लाइ ॥७८५॥

कबीर हरि सबकूँ भजै, हरि कूँ भजै न कोइ ।
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होइ ॥७८६॥

आप सवारथ मेदनी, भगत सवारथ दास ।
कबीरा राँम सवारथी, जिनि छाड़ी तन की आस ॥७८७॥

ढोल दमामा बाजिया, सबद सुणइ सब कोइ ।
जैसल देखि सती भजे, तौ दुहु कुल हासी होइ ॥७८८॥

४६. काल कौ अंग

झूठे सुख कौ सुख कहैं, मानत है मन मोद ।
खलत चबीणाँ काल का, कुछ मुख मै कुछ गोद ॥७८९॥

आज काल्हिक निस हमैं, मारगि माल्हंता ।
काल सिचांणाँ नर चिड़ा, औझड़ औच्यंताँ ॥७९०॥

काल सिहाँणै यौं खड़ा, जागि पियारो म्यंत ।
राम सनेही बाहिरा, तूँ क्यूँ सोवै नच्यंत ॥७९१॥

सब जग सूता नींद भरि , संत न आवै नींद ।
काल खड़ा सिर उपरैं, ज्यूँ तोरणि आया बींद ॥७९२॥

आज कहै हरि काल्हि भजौगा, काल्हि कहै फिरि काल्हि ।
आज ही काल्हि करंताडाँ ही, औसर जासि चालि ॥७९३॥

कबीर पल की सुधि नहीं, करै काल्हि का साज ।
काल अच्यंता झपड़सी, ज्यूँ तीतर को बाज ॥७९४॥

कबीर टग टग चोघताँ, पल पल गई बिहाइ।
जीव जँजाल न छाड़ई, जम दिया दमामा आइ ॥७९५॥

मैं अकेला ए दोइ जणाँ, छेती नाँही काँइ।
जे जम आगै ऊबरौं, तो जुरा पहूँती आइ ॥७९६॥

बारी बारी आपणीं, चले पियारे म्यंत।
तेरी बारी रे जिया, निड़ी आवै निंत ॥७९७॥

दों की दाधी लकड़ी, ठाढ़ी करे पुकार।
मति बसि पड़ौं लुहार कै, जालै दूजी बार ॥७९८॥

जो ऊग्या सो आँथवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणियाँ सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ ॥७९९॥

जो पहर्‌या सो फाटिसी, नाँव धर्‌या सो जाइ।
कबीर सोइ तत्त गहि, जो गुरि दिया बताइ ॥८००॥

निधड़क बैठा राम बिन, चेतनि करै पुकार।
यहु तन जल बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥८०१॥

पाँणी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति।
एक दिनाँ छिप जाँहिंगे, तारे ज्यूँ परभाति ॥८०२॥

कबीर यहु जग कुछ नहीं, षिन षारा षिन मीठ।
काल्हि जु बैठा माड़ियाँ, आज नसाँणाँ दीठ ॥८०३॥

कबीर मंदिर आपणै, नित उठि करती आलि।
मड़हट देष्याँ डरपती, चौड़े दीन्ही जालि ॥८०४॥

मंदिर माँहि झबूकती, दीवा केसी जोति।
हंस बटाऊ चलि गया, काढ़ौ घर की छोति ॥८०५॥

ऊँचा मंदर धौलहर, माटी चित्री पौलि।
एक राम के नाँव बिन, जँम पाड़गा रौलि ॥८०६॥

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
नाँ जाँणै कहाँ मारिसी, कै घर कै परदेस ॥८०७॥

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गए सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चले बजावणहार ॥८०८॥

धवणि धवंती रहि गई, बुझि गए अंगार।
अहरणि रह्या ठमूकड़ा, जब उठि चले लुहार ॥८०९॥

पंथी ऊभा पंथ सिरि, बुगचा बाँध्या पूठि।
मारणाँ मुह आगैं खड़ा, जीवण का सब झूठ ॥८१०॥

यहु जिव आया दूर थैं, अजौं भी जासी दूरि।
बिच कै बासे रमि रह्या, काल रह्या सर पूरि ॥८११॥

राम कह्या तिनि कहि लिया, जुरा पहूँती आइ।
मंदिर लागै द्वार यैं, तब कुछ काढणां न जाइ ॥८१२॥

बरिया बीती बल गया, बरन पलट्या और।
बिगड़ी बात न बाहुड़ै, कर छिटक्याँ कत ठौर ॥८१३॥

बरिया बीती बल गया, अरू बुरा कमाया।
हरि जिन छाड़ै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥८१४॥

कबीर हरि सूँ हेत करि, कूड़ै चित्त न लाव।
बाँध्या बार षटीक कै, तापसु किती एक आव ॥८१५॥

बिष के बन मैं घर किया, सरप रहे लपटाइ।
ताथैं जियरै डरै गह्या, जागत रैणि बिहाइ ॥८१६॥

कबीर सब सुख राम है, और दुखाँ की रासि।
सुर नर मुनियर असुर सब, पड़े काल की पासि ॥८१७॥

काची काया मन अथिर, थिर थिर काँम करंत।
ज्यूँ ज्यूँ नर निधड़क फिरै, त्यूँ त्यूँ काल हसंत ॥८१८॥

रोवणहारे भी मुए, मुए जलाँवणहार।
हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार ॥८१९॥

जिनि हम जाए ते मुए, हम भी चालणाहार।
जे हमको आगैं मिलै, तिन भी बंध्या भार ॥८२०॥

जूरा कूती जीवन सभा, काल अहेड़ी बार।
पलक बिना मैं पाकड़, गरव्यो कहा गँवार ॥८२१॥

मालन आवत देखि करि, कलियाँ करी पुकार।
फूले फूले चुणि लिए, काल्हि हमारी बार ॥८२२॥

बाढ़ी आवत देखि करि , तरवर–डोलन लाग ।
हम कटे की कुछ नही, पंखेरु घर भाग ॥८२३॥

फाँगुण आवत देखि करि, बन रूना मन माँहि ।
ऊँची डाली पात है, दिन दिन पीले थाँहि ॥८२४॥

पात पडंता यों कहै, सुनि तरवर बणराइ ।
अब के बिछुड़े ना मिलै, दूर पड़ैंगे जाइ ॥८२५॥

मेरा वीर लुहारिंया, तू जिनि जालै मोहि ।
इक दिन ऐसा होइगा, हूँ जालौंगी तोहि ॥८२६॥

कबीर पंच पखेरुवा, राखे पोष लगाइ ।
एक जु आया पारधी ले गयो सबै उड़ाइ ॥८२७॥

काएँ चुणावै मालिया, चूनैं माटी लाइ ।
मीच सुणैगी पापिणी, उधोरा लैली आइ ॥८२८॥

काएँ चिणावै मालिया, लाँबी भीति उतारि ।
घर तौ साढ़ी तीनि हाथ, घणौ तौ पौंणा चारि ॥८२९॥

ऊँचा महल चिणाँइयाँ, सोबन कलसु चढ़ाइ ।
वे मंदर खाली पड़्या, रहे मसाणौ जाइ ॥८३०॥

इहर अभागी माँछली, छापरि माँणी आलि ।
डाबरड़ा छूटै नही, सकै त समंद सभालि ॥८३१॥

मँछी हुआ न छूटिए , झीवर मेरा काल ।
जिहिं जिहिं डाबर हूँ फिरौ, तिहिं तिहिं माँड़ै जाल ॥८३२॥

पाँणी माँहि ला माँछली, सक तौ पाकड़ि तीर ।
कड़ी कूद की आइ पहुँता कीर ॥८३३॥

मंछ बिकंता देखिया झीवर के करवारि ।
ऊँखड़िया रत बालियाँ तुम क्यूँ बँधे जालि ॥८३४॥

पाँणी माँहै घर किया, चेजा किया पतालि ।
पासा पड़्या करम का यूँ हम बीधे जालि ॥८३५॥

सूकण लगा केवड़ा, तूटीं अरहर माल ।
पाँणी की कल जणताँ, गया ज सीचणहार ॥८३६॥

कबीर हरणी दूबली, हरियालै तालि ।
लख अहेड़ी एक जीव, कित एक टालौं भालि ॥८३७॥

जिसहि न रहणा इत जागि, सी क्यूँ लौड़ै मीत ।
जैसे पर घर पाहुणा, रंहै उठाए चीत ॥८३८॥

कबीर गाफिल क्या फिरै, सोवै कहा न चीत ।
एवड़ माहि तै ले चल्या, भज्या पकड़ि षरीस ॥८३९॥

साँई सू मिसि मछीला, के जा सुमिरै लाहूत ।
कबही उझंकै कटिसी, हुँण ज्यौं बगमंकाहू ॥८४०॥

बेटा जाया तौ का भया, कहा बजावै थाल ।
आवण जावण ह्वै रहा, ज्यों कीड़ी का थाल ॥८४१॥

४७. सजीवनी कौ अंग

जहाँ जुरा मरण ब्यापै नहीं, मुवा न सुणिये कोइ ।
चलि कबीर तिहि देसड़ै, जहाँ बैद विधाता होइ ॥८४२॥

कबीर जोगी बनि बस्या, षणि खाये कँद मूल ।
नाँ जाणा किस जड़ी थैं, अमर भए असथूल ॥८४३॥

कबीर हरि चरणौं चल्या, माया मोह थै टूटि ।
गगन मंडल आसण किया, काल गया सिर कूटि ॥८४४॥

यहु मन पटिंक पछाड़ि लै, सब आपा मिटि जाइ ।
पंगलु ह्वै पिव पिव करै, पीछैं काल न खाइ ॥८४५॥

कबीर मन तीषा किया, बिरह लाइ षरसाँड़ ।
चित चणूँ मैं चुभि रह्या, तहाँ नहीं काल काल पाण ॥८४६॥

तरवर तास बिलंबिए , बारह मास फलंत ।
सीतल छाया गहर फल, पंषी केलि करंत ॥८४७॥

दाता तरवर दया फल, उपगारी जीवंत ।
पंषी चले दिसावराँ, बिरषा सुफल फलंत ॥८४८॥

४८. अपारिष कौ अंग

पाइ पदारथ पेलि करि , कंकर लीया हाथि ।
जोड़ी बिछुटी हंस की, पड़्या बगाँ के साथि ॥८४९॥

एक अचंभा देखिया, हीरा हाटि बिकाइ ।
परिषणहारे बाहिरा, कोड़ी बदलै जाइ ॥८५०॥

कबीर गुदड़ी बीषरी, सौदा गया विकाइ ।
खोटा बाँध्याँ गाँठड़ी, इव कुछ लिया न जाइ ॥८५१॥

पैड़ै मोती बिखर्‌या, अंधा निकस्या आइ ।
जोति बिनाँ जगजीस की, जगत उलंघ्या जाइ ॥८५२॥

कबीर यहु जग अंधला, जैसी अंधी गाइ ।
बछा था सो मरि गया, ऊभी चाँम चटाइ ॥८५३॥

चंदन रूख बदस गयो, जण जण कहै पलास ।
ज्यौं ज्यौं चूल्हैं लोंकिए , त्यूँ त्यूँ अधिकी वास ॥८५४॥

हँसड़ो तो महाराण को, उड़ि पड्‌यो थलियाँह ।
बगुलौ करि करि मारियो, सझ न जाँणै त्याँह ॥८५५॥

हंस बगाँ के पाहुँना, कहीं, दसा कै केरि ।
बगुला कांई गरबियाँ, बैठा पाँख पषेरि ॥८५६॥

बगुला हंस मनाइ लै, नेड़ों थकाँ बहोड़ि ।
त्याँह बैठा तूँ उजला, त्यौं हंस्यौं प्रीति न तोड़ि ॥८५७॥

४९. पारिष कौ अंग

जब गुण कूँ गाहक मिलै, तब गुण लाख बिकाइ ।
जब गुण कौ गाहक नहीं, तब कौड़ी बदलै जाइ ॥८५८॥

कबीर लहरि समंद की, मोती बिखरे आइ ।
बगुला मंझ न जाँणई, हंस चुणे चुणि खाइ ॥८५९॥

हरि हीराजन जौहरी, ले ले माँडिय हाटि ।
जबर मिलैगा पारिषू , तब हीराँ की साटि ॥८६०॥

कबीर मनमाना तौलिए , सबदाँ मोल न तोल ।
गौहर परषण जाँणहीं, आपा खोवै बोल ॥८६१॥

कबीर सपनही साजन मिले, नइ नइ करै जुहार ।
बोल्याँ पीछे जांणिये, जो जाकौ ब्योहार ॥८६२॥

मेरी बोली पूरबी, ताइ न चीन्है कोइ ।
मेरी बोली सो लखै, जो पूरब का होइ ॥८६३॥

५०. उपजणि कौ अंग

नाव न जाँणै गाँव का, मारगि लागा जाँउँ ।
काल्हि जु काटा भाजिसी, पहिली क्यों न खड़ाउ ॥८६४॥

सीप भई संसार थैं, चले जु साँई पास ।
अविनासी मोहिं ले चल्या, पुरई मेरी आस ॥८६५॥

इंद्रलोक अचरिज भया, ब्रह्मा पड़्या बिचार ।
कबीर चाल्या राँम पैं, कौतिगहार अपार ॥८६६॥

ऊँचा चढ़ि असमान कू, मेरु ऊलंघे ऊड़ि ।
पसू पंषेरू जीव जंत, सब रहें मेर में बूड़ि ॥८६७॥

सब पाँणी पाताल का, कढ़ि कबीरा पीव ।
बासी पावस पड़ि मुए , बिषै बिलंबे जीव ॥८६८॥

कबीर सुपिनै हरि मिल्या, सूताँ लिया जगाइ ।
आषि न मीचौं डरपता, मति सुपिनाँ ह्वै जाइ ॥८६९॥

गोब्यंद कै गुण बहुत हैं, लिखै जु हिरदै माँहि ।
डरता पाँणी जा पीऊं, मति वै धोये जाँहि ॥८७०॥

कबीर अब तौ ऐसा भया, निरमोलिक निज नाउँ ।
पहली काच कबीर था, फिरता ठाँवैं ठाउँ ॥८७१॥

भौ समंद विष जल भर्‌या, मन नहीं बाँधै धीर ।
सबल सनेही हरि मिले, तब उतरे पारि कबीर ॥८७२॥

भला सहेला ऊतरयर, पूरा मेरा भाग ।
राँम नाँव नौका गह्या, तब पाँणी पंक न लाग ॥८७३॥

कबीर केसौ की दया, संसा घाल्या खोइ ।
जे दिन गये भगति बिन, ते दिन सालै मोहि ॥८७४॥

कबीर जाचण जाइ्या, आगै मिल्या अंच ।
ले चाल्या घर आपणै, भारी खाया संच ॥८७५॥

कबीर हरिका डर्पतां, ऊन्हाँ धान न खाँऊँ ।
हिरदय भीतर हरि बसैं, ताथै खरा डराऊँ ॥८७६॥

५१. दया निरबैरता कौ अंग

कबीर दरिया प्रजल्या, दाझै जल थल झल ।
बस नाँही गोपाल सौ, बिनसै रतन अमोल ॥८७७॥

ऊँनमि बिआई बादली, बर्सण लगे अँगार ।
उठि कबीरा धाह थे, दाझत है संसार ॥८७८॥

दाध बली ता सब दुखी, सुखी न देखौ कोइ ।
जहाँ कबीरा पग धरै तहाँ टुक धीरज होइ ॥८७९॥

५२. सुंदरि कौ अंग

कबीर सुंदरि यों कहै, सुणि हो कंत सुजाँण ।
बेगि मिलौ तुम आइ करि, नहीं तर तजौं पराँण ॥८८०॥

कबीर जाकी सुंदरी, जाँणि करै विभचार ।
ताहि न कबहूँ आदरै, प्रेम पुरिष भरतार ॥८८१॥

जे सुंदरि साँई भजै, तजै आन की आस ।
ताहि न कबहूँ परहरै, पलक न छाड़ै पास ॥८८२॥

इस मन को मैदा करौ, नान्हाँ करि करि पीसि ।
तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म झलकै सीस ॥८८३॥

दरिया पारि हिंडोलना, मेल्या कंत मचाइ ।
सोई नारि सुलषणी, नित प्रति झूलण जाइ ॥८८४॥

दाध बली तो सब दुखी, सुखी न दीसै कोइ ।
को पुत्रा को बंधवाँ को धणहीना होइ ॥८८५॥

हूँ रोऊँ संसार कौ, मुझे न रोवै कोइ ।
मुझकौ सोंई रोइसी, जे राम सनेही होइ ॥८८६॥

मूरो कौ का रोइए , जो अपणै घर जाइ ।
रोइए बंदीवान को, जो हाटै हाट बिकाइ ॥८८७॥

बाग बिछिटे मिग्र लौ, ति हि जि मारै कोइ ।
आपै हौ मरि जाइसी, डावाँ डोला होइ ॥८८८॥

हरि दरियाँ सूभर भरिया दरिया वार न पार ।
खालिक बिन खाली नही जेंवा सूई संचार ॥८८९॥

कबीर बहुत दिवस भटकत रह्या, मन में विषै विसाम ।
ढूँढत ढूँढत जग फिर्‌या, तिणकै ओल्है राँम ॥८९०॥

५३. कस्तूरियाँ मृग कौ अंग

कस्तूरी कुंड़लि बसै, मृग ढूँढ़ै बन माँहिं ।
ऐसै घटि घटि राँम है, दुनियाँ देखै नाँहिं ॥८९१॥

कोइ एक देखै संत जन, जाँकै पाँचूँ हाथि ।
जाकै पाँचूँ वस नहीं, ता हरि संग न साथि ॥८९२॥

सो साँई तन में बसै, भ्रँम्यों न जाणै तास ।
कस्तूरी के मृग ज्यूँ, फिरि फिरि सूँघै घास ॥८९३॥

कबीर खोजी राम का, गया जु सिघल दीप ।
राम तौ घट भीतर रमि रह्या, जौ आवै परतीत ॥८९४॥

घटि बधि कहीं न देखिये, ब्रह्म रह्या भरपूरि ।
जिनि जान्या तिनि निकष्टि है, दूरि कहैं ते दूरि ॥८९५॥

मैं जाण्याँ हरि दूरि है, हरि रह्या सकल भरपूरि ।
आप पिछाँणै बाहिरा, नेड़ा ही थैं दूरि ॥८९६॥

तिणकै ओल्है राम है, परबत मे हैं भाइ ।
सतगुर मिलि परचा भया, तब हरि पाया घट माँहि ॥८९७॥

राँम नाँम तिहूँ लोक मैं, सकलहु रह्या भरपूरि ।
यह चतुराई जाहु जलि, खोजत डोलैं दूरि ॥८९८॥

ज्यूँ नैनूँ मैं पूतली, त्यूँ खालिक घट माँहि ।
मूरिख लोग न जाँणही, बाहरि ढूँढण जाँहि ॥८९९॥

५४. निंद्या कौ अंग

लोग बिचारा नींदई, जिन्ह न पाया ग्याँन ।
राँम नाँम राता रहै, तिनहुँ न भावै आँन ॥९००॥

दोख पराये देखि करि, चल्या हसंत हसंत ।
अपने च्यँति न आवई, जिनकी आदि न अंत ॥९०१॥

निंदक नेड़ा राखिये, आँगणि कुटी बँधाइ ।
बिन साबुण पाँणी बिना, निरमल करै सुभाइ ॥९०२॥

न्यंदक दूरि न कीजिये, दीजे आदर माँन।
निरमल तन मन सब करै, बकि बकि आँनहिं आँन ॥९०३॥

जे को नींदे साध कूँ, संकटि आवै सोइ।
नरक माँहि जाँमैं मरैं, मुकटि न कबहूँ होइ ॥९०४॥

कबीर घास नींदये, जो पाऊँ तलि होइ।
उड़ि पडै जब आँखि में, खरा दुहेली होइ ॥९०५॥

आपन यौं न सराहिए, और न कहिये रंक।
नाँ जाँणौं किस ब्रिष तलि, कूड़ा होइ करंक ॥९०६॥

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ।
आप ठग्याँ सुख ऊपजैं, और ठग्याँ दुख होइ ॥९०७॥

अब कै जे साँई मिलैं, तौ सब दुख आपौं रोइ।
चरनूँ ऊपर सीस धरि, कहूँ ज कहणाँ होइ ॥९०८॥

निंदक तौ नाँकी, बिना, सोहै नकटयाँ माँहि।
साधू सिरजनहार के, तिनमैं सोहै नाँहि ॥९०९॥

आपण यौं न सराहिए, पर निंदिए न कोइ।
अजहूँ लांबा द्योहड़ा, ना जाणौ क्या होइ ॥९१०॥

५५. निगुणाँ कौ अंग

हरिया जाँणै रूषड़ा, उस पाँणीं का नेह।
सूका काठ न जाणई, कबहूँ बूठा मेह ॥९११॥

झिरिमिरि झिरिमिरि बरषिया, पाँहण ऊपरि मेह।
माटी गलि सैंजल भई, पाँहण वोही तेह ॥९१२॥

पार ब्रह्म बूठा मोतियाँ, बाँधी सिषराँह।
सगुराँ सगुराँ चुणि लिया, चूक पड़ी निगुराँह ॥९१३॥

कबीर हरि रस बरषिया, गिर डूँगर सिषराँह।
नीर मिबाणाँ ठाहरै, नाऊँ छा परड़ाह ॥९१४॥

कबीर मूँडठ करमिया, नष सिष पाषर ज्याँह।
बाँहणहारा क्या करै, बाँण न लागै त्याँह ॥९१५॥

कहत सुनत सब दिन गए , उरझि न सुरझ्या मन ।
कहि कबीर चेत्या नहीं, अजहुँ सुपहला दिन ॥९१६॥

कहै कबीर कठोर कै, सबद न लागै सार ।
सुधबुध कै हिरदै भिदै, उपजि विवेक विचार ॥९१७॥

मा सीतलता के कारणै, माग बिलंबे आइ ।
रोम रोम विष भरि रह्या, अंमृत कहा समाइ ॥९१८॥

सरपहि दूध पिलाइये, दूधैं विष ह्वै जाइ ।
ऐसा कोइ नाँ मिले, स्यूँ सरपैं विष खाइ ॥९१९॥

जालौ इहै बड़पणाँ, सरलै पेड़ खजूरि ।
पंखी छाँह न बीसवैं, फल लागे ते दूरि ॥९२०॥

ऊँचा कुल के कारणै, बस बध्या अधिकार ।
चंदन बास भेदै नहीं, जाल्या सब परिवार ॥९२१॥

कबीर चंदन कै निड़ै, नींव भि चंदन होइ ।
बूड़ा बंस बड़ाइताँ, यौं जिनि बूड़ै कोइ ॥९२२॥

बेकाँमी को सर जिनि बाहै, साठी खोवै मूल गँवावै ।
दास कबीर ताहि को बाहैं , गलि सनाह सनमुख सरसाहै ॥९२३॥

पशुवा सों पानी पड़ो, रहि रहि याम खीजि ।
ऊसर बाह्यौ न ऊगसी, भावै दूणाँ बीज ॥९२४॥

५६. बीनती कौ अंग

कबीर साँई तौ मिलहिगे, पूछहिगे कुसलात ।
आदि अंति की कहूँगा, उर अंतर की बात ॥९२५॥

कबीर भूलि बिगाड़िया, तूँ नाँ करि मैला चित ।
साहिब गरवा लोड़िये, नफर बिगाड़ै नित ॥९२६॥

करता करै बहुत गुँण, औगुँण कोई नाँहि ।
जे दिल खोजौं आपणीं, तौ सब औंगुण माँहि ॥९२७॥

औसर बीता अलपतन, पीव रह्या परदेस ।
कलंक उतारी केसवाँ, भाँनौं भरंम अँदेस ॥९२८॥

कबीर करत है विनती, भौसागर के ताँई ।
बंदे ऊपरि जोर होत है, जँम कूँ बरिज गुसाँई ॥९२९॥

हज काबै ह्वै ह्वै गया, केती बार कबीर।
मीराँ मुझ मैं क्या खता, मुखाँ न बोलै पीर ॥९३०॥

ज्यूँ मन मेरा तुझ सौं, यौं जे तेरा होइ।
ताता लोबा यौं मिलै, संधि न लखई कोइ ॥९३१॥

बरियाँ बीती बल गया, अरु बुरा कमाया।
हरि जिनि छाड़ै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥९३२॥

५७. साषीभूत कौ अंग

कबीर पूछै राँम कूँ ,सकल भवनपति राइ।
सबही करि अलगा रहौ, सो बिधि हमहिं बताइ ॥९३३॥

जिहि बरियाँ साँई मिलै, तास न जाँणै और।
सब कूँ सुख दे सबद करि , अपणीं अपणीं ठौर ॥९३४॥

कबीर मन का बाहुला, ऊँचा बहै असोस।
देखत हीं दह मैं पड़े, दई किसा कौं दोस ॥९३५॥

५८. बेली कौ अंग

अब तौ ऐसी ह्वै पड़ी, नाँ तूँ बड़ी बेलि।
जालण आँणीं लाकड़ी, ऊठी कूँपल मेल्हि ॥९३६॥

आगैं आगैं दौं जलैं, पीछै हरिया होइ।
बलिहारी ता विरष की, जड़ काट्याँ फल होइ ॥९३७॥

जे काटौं तौ डहडही, सींचौं तौ कुमिलाइ।
इस गुणवंती बेलि का, कुछ गुँण कह्याँ न जाइ ॥९३८॥

आँगणि बेलि अकासि फल, अण ब्यावर का दूध।
ससा सींग की धूनहड़ी, रमै बाँझ का पूत ॥९३९॥

कबीर कड़ई बेलड़ी, कड़वा ही फल होइ।
साँध नाँव तब पाइए , जे बेलि बिछोहा होइ ॥९४०॥

सींध भइ तब का भया, चहूँ दिसि फूटी बास।
अजहूँ बीज अंकूर है, भीऊगण की आस ॥९४१॥

सिंधि जु सहजैं फूकि गई, आगि लगी बन माँहि।
बीज बास दून्यूँ जले, ऊगण कौं कुछ नाँहि ॥९४२॥

५९.अबिहड़ कौ अंग

कबीर साथी सो किया, जाके सुख दुख नहीं कोइ ।
हिलि मिलि ह्वै करि खेलिस्यूँ कदे बिछोह न होइ ॥९४३॥

कबीर सिरजनहार बिन, मेंरा हितू न कोइ ।
गुण औगुण बिहड़ै नहीं, स्वारथ बंधी लोइ ॥९४४॥

आदि मधि अरू अंत लौं, अबिहड़ सदा अभंग ।
कबीर उस करता की, सेवग तजै न संग ॥९४५॥

६०.अन्य

आठ जाम चौसठि घरी तुअ निरखत रहै जीव ।
नीचे लोइन क्यों करौ सब घट देखौ पीउ ॥९४६॥

ऊँच भवन कनक कामनी सिखरि धजा फहराइ ।
ताते भली मधुकरी संत संग गुन गाइ ॥९४७॥

अंबर धनहरू छाइया बरिष भरे सर ताल ।
चातक ज्यों तरसत रहै तिनकौ कौन हवाल ॥९४८॥

अल्लह की कर बंदगी जिह सिमरत दुख जाइ ।
दिल महि साँई परगटै बुझै बलंती लाइ ॥९४९॥

अवरह कौ उपदेस ते मुख मैं परिहै रेतु ।
रासि बिरानी राखते खाया घर का खेतु ॥९५०॥

कबीर आई मुझहि पहि अनिक करे करि भेसु ।
हम राखे गुरु आपने उन कीनो आदेसु ॥९५१॥

आखी केरे माटूके पल पल गई बिहाइ ।
मनु जंजाल न छाड़ई जम दिया दमामा आइ ॥९५२॥

आसा करिये राम की अवरै आस निरास ।
नरक परहि ते मानई जो हरिनाम उदास ॥९५३॥

कबीर इहु तनु जाइगा सकहु त लेहु बहोरि ।
नागे पांवहुऊ ते गये जिनके लाख करोरि ॥९५४॥

कबीर इहु तनु जाइगा कवने मारग लसाइ ।
कै संगति करि साध की कै हरि के गुन गाइ ॥९५५॥

एक घड़ी आधी घड़ी आधी हूं ते आध ।
भगतन सेटी गोसटे जो कीने सो लाभ ॥९५६॥

एक मरंते दुइ मुये दोइ मरंतेहि चारि ।
चारि मरंतहि छंहि मुये चारि पुरुष दुइ नारि ॥९५७॥

ऐसा एक आधु जो जीवत मृतक होइ ।
निरभै होइ कै गुन रवै जत पेखौ तत सोइ ॥९५८॥

कबीर ऐसा को नहीं इह तन देवै फूकि।
अंधा लोगु न जानई रह्यौ कबीरा कूकि ॥९५९॥

ऐसा जंतु इक देखिया जैसी देखी लाख ।
दीसै चंचलु बहु गुना मति हीना नापाक ॥९६०॥

कबीर ऐसा बीजु सोइ बारह मास फलंत ।
सीतल छाया गहिर फल पंखी केल करंत ॥९६१॥

ऐसा सतगुर जे मिलै तुट्ठा करे पसाउ ।
मुकति दुआरा मोकला सहजै आवौ जाउ ॥९६२॥

कबीर ऐसी होइ परी मन को भावतु कीन ।
मरने ते क्या डरपना जब हाथ सिधौरा लीन ॥९६३॥

कंचन के कुंडल बने ऊपर लाख जड़ाउ ।
दीसहि दाधे कान ज्यों जिन मन नाहीं नाउ ॥९६४॥

कबीर कसौटी राम की झूठा टिका न कोइ ।
राम कसौटी सो सहै जो मरि जीवा होइ ॥९६५॥

कबीर कस्तूरी भया भवर भये सब दास ।
ज्यों ज्यों भगति कबीर की त्यों त्यों राम निवास ॥९६६॥

कागद केरी ओबरी मसु के कर्म कपाट ।
पाहन बोरी पिरथमी पंडित थाड़ी बाट ॥९६७॥

कम परे हरि सिमिरिये ऐसा सिमरो चित ।
अमरपुरा बांसा करहु हरि गया बहोरै बित्त ॥९६८॥

काया कजली बन भया मन कुंजर मयमंतु ।
अंक सुज्ञान रतन्न है खेवट बिरला संतु ॥९६९॥

काया काची कारवी काची केवल धातु ।
सावतु रख हित राम तनु माहि त बिनठी बात ॥९७०॥

कारन बपुरा क्या करै जौ राम न करै सहाइ ।
जिहि जिहि डाली पग धरौं सोई मुरि मुरि जाइ ॥९७१॥

कबीर कारन सो भयो जो कीनौ करतार ।
तिसु बिनु दूसर को नहीं एकै सिरजनुहार ॥९७२॥

कालि करंता अबहि करु अब करता सुइ ताल ।
पाछै कछू न होइगा जौ सिर पर आवै काल ॥९७३॥

कीचड़ गिर पर्‌या किछू न आयो हाथ ।
पीसत पीसत चाबिया सोई निबह्या साथ ॥९७४॥

कबीर कूकरु भौकता कुरंग पिछैं उठि धाइ ।
कर्मी सति गुर पाइया जिन हौ लिया छड़ाइ ॥९७५॥

कबीर कोठी काठ की दह दिसि लागी आगि ।
पंडित पंडित जल मुवे मूरख उबरे भागि ॥९७६॥

कोठे मंडल हेतु करि करि काहे भरहु संवारि ।
कारज साढ़े तीन हथ धनी त पौने चारि ॥९७७॥

कौड़ी कौड़ी जोरि के जोरे लाख करोरि ।
चलती बार न कछु मिल्यो लई लंगोटी छोरि ॥९७८॥

खिंथा जलि कोयला भई खापर फूटम फूट ।
जोगी बपुड़ा खोलियो आसनि रही बिभूती ॥९७९॥

खूब खाना खीचरी जामैं अंमृत लोन ।
हेरा रोटी कारने गला कटावै कोन ॥९८०॥

गंगा तीर जू घर करहि पीवहि निर्मल नीर ।
बिनु हरि भगति न मुकति होइ यों कहि रमे कबीर ॥९८१॥

कबीर राति होवहि कारिया कारे ऊभे जंतु ।
लैं गाहे उठि धावते सिजानि मारे भगवंतु ॥९८२॥

कबीर मनतु न कीजियै चाम लपेटे हाथ ।
हैबर उपर छत्र तर ते फुन धरती गाड़ ॥९८३॥

कबीर गरबु न कीजियै ऊँचा देखी अवासु ।
आजु कालि भुइ लेटना ऊपरि जामै घासु ॥९८४॥

कबीर गरबु न कीजियै रंकु न हसियै कोइ ।
अजहु सु नाउ समुद्र महि क्या जानै क्या होइ ॥९८५॥

कबीर गरबु न कीजियै देही देखि सुरंग ।
आजु कालि तजि जाहुगे ज्यों कांचुरी भुजंग ॥९८६॥

गहगंच पर्‌यो कुटुंम के कंठै रहि गयो राम ।
आइ परे धर्म राइ के बीचहिं धूमा धाम ॥९८७॥

कबीर गागर जल भरी आजु कालि जैहै फूटि ।
गुरु जु न चेतहि आपुनो अधमाझली जाहिगे लूटि ॥९८८॥

गुरु लागा तब जानिये मिटे मोह तन ताप ।
हरष सोग आझै नहीं तब हरि आपहि आप ॥९८९॥

कबीर बाणी पीड़ते सति गुरु लिये छुड़ाइ ।
परा पूरबली भावानी परगति होई आइ ॥९९०॥

चकई जौ निसि बीछुरै आइ मिले परभाति ।
जो नर बिछुरै राम स्यों ना दिन मिले न राति ॥९९१॥

चतुराई नहिं अति घनी हरि जपि हिरदै माहि ।
सूरी ऊपरि खेलना गिरैं त ठाहुर नाहि ॥९९२॥

चरन कमल की मौज को कहि कैसे उनमान ।
कहिबे को सोभा नहीं देखा ही परवान ॥९९३॥

कबीर चावल कारने तुमको मुहली लाइ ।
संग कुसंगी बैसते तब पूछै धर्मराइ ॥९९४॥

चुगै चितारै भी चुगै चुगि चगि चितारै ।
जैसे बच रहि कुंज मन माया ममता रे ॥९९५॥

चोट सहेली सेल की लागत लेइ उसास ।
चोट सहारे सबद की तासु गुरू मैं दास ॥९९६॥

जग काजल कोठरी अंध परे तिस मांहि ।
हौ बलिहारी तिन्न की पैसु जू नीकसि जाहि ॥९९७॥

जग बांध्यौ जिह जेवरी तिह मत बंधहु कबीर ।
जैहहि आटा लोन ज्यों सोन समान शरीर ॥९९८॥

जग मैं चेत्यो जानि कै जग मैं रह्यौ समाइ ।
जिनि हरि नाम न चेतियो बादहि जनमें आइ ॥९९९॥

कबीर जहं जहं हौ फिर्‌यो कौतक ठाओ ठांइ ।
इक राम सनेही बाहरा ऊजरू मेरे भांइ ॥१०००॥

कबीर जाको खोजते पायो सोई ठौर ।
सोइ फिरि के तू भया जकौ कहता और ॥१००१॥

जाति जुलाहा क्या करे हिरदै बसै गुपाल ।
कबीर रमइया कंठ मिलु चूकहि सब जंजाल ॥१००२॥

कबीर जा दिन ही सुआ पाछै भया अनंद ।
मोहि मिल्यो प्रभु आपना संगी भजहि गोबिंद ॥१००३॥

जिह दर आवत जातहू हटकै नाही कोइ ।
सो दरु कैसे छोड़िये जौ दरु ऐसा होइ ॥१००४॥

जीया जो मारहि जोरु करि कहते हहि जु हलालु ।
दफतर दई जब काढिहै होइगा कौन हवालु ॥१००५॥

कबीर जेते पाप किये राखे तलै दुराइ ।
परगट भये निदान सब पूछै धर्मराइ ॥१००६॥

जैसी उपजी पेड़ ते जो तैसी निबहै ओड़ि ।
हीरा किसका बापुरा पुजहिं न रतन करोड़ि ॥१००७॥

जो मैं चितवौ ना करै क्या मेरे चितवे होइ ।
अपना चितव्या हरि करैं जो मारै चित न होइ ॥१००८॥

जोर किया सो जुलुम है लेइ जवाब खुदाइ ।
दफतर लेखां नीकसै मार मुहै मुह खाइ ॥१००९॥

जो हम जंत्र बजावते टूटि गई सब तार ।
जंत्र बिचारा क्या करे चले बजावनहार ॥१०१०॥

जो गृह कर हित धर्म करु नाहिं त करु बैराग ।
बैरागी बंधन करै ताकौ बड़ौ अभागु ॥१०११॥

जौ तुहि साध पिरम्म की सीस काटि करि गोइ ।
खेलत खेलत हाल करि जौ किछु होइ त होइ ॥१०१२॥

जौ तुहि साध पिरम्म की पाके सेती खेलु ।
काची सरसो पेलि कै ना खलि भई न तैलु ॥१०१३॥

कबीर झंखु न झंखियै तुम्हरो कह्यो न होइ ।
कर्म करीम जु करि रहे मेटि न साकै कोइ ॥१०१४॥

टालै टेलै दिन गया ब्याज बढंतो जाइ ।
नां हरि भज्या ना खत फट्यो काल पहूंचो आइ ॥१०१५॥

ठाकुर पूजहिं मोल ले मन हठ तीरथ जाहि ।
देखा देखी स्वांग धरि भूले भटका खाहि ॥१०१६॥

कबीर डगमग क्या करहि कहा डुलावहि जीउ ।
सब सुख की नाइ को राम नाम रस पीउ ॥१०१७॥

डूबहिगो रे बापुरे बहु लोगन की कानि ।
परोसी के जो हुआ तू अपने भी जानि ॥१०१८॥

डूबा था पै उब्बर्‌यो गुन की लहरि झबक्कि।
जब देख्यो बड़ा जरजरा तब उतरि पर्‌यौ ही फरक्कि ॥१०१९॥

तरवर रूपी रामु है फल रूपी बैरागु ।
छाया रूपी साधु है जिन तजिया बादु बिबादु ॥१०२०॥

कबीर तासै प्रीति करि जाको ठाकुर राम ।
पंडित राजे भूपती आवहि कौने काम ॥१०२१॥

तूं तूं करता तूं हुआ मुझ में रही न हूं ।
जब आपा पर मिटि गया जित देखौं तित तूं ॥१०२२॥

थूनी पाई थिति भई सति गुरु बंधी धीर ।
कबीर हीरा बनजिया मानसरोवर तीर ॥१०२३॥

कबीर थोड़े जल माछली झीवर मेल्यौ जाल ।
इहटौ घनै न छूटिसहि फिरि करि समुद सम्हालि ॥१०२४॥

कबीर देखि कै किह कहौ कहे न को पतिआइ ।
हरि जैसा तैसा उही रहौ हरखि गुन गाइ ॥१०२५॥

देखि देखि जग ढूंढ़िया कहूं न पाया ठौर।
जिन हरि का नाम न चेतिया कहा भुलाने और ॥१०२६॥

कबीर धरती साध की तरकस बैसहि गाहि।
धरती भार न ब्यापई उनकौ लाहू लाहि ॥१०२७॥

कबीर नयनी काठ की क्या दिखलावहि लाइ।
हिरदै राम न चेतही इक नयनी क्या होइ ॥१०२८॥

जा घर साध न सोवियहि हरि की सेवा नाहि।
ते घर मरहट सारखे भूत बसहि तिन मांहि ॥१०२९॥

ना मोहि छानि न छापरी ना मोहि घर नहीं गाउं।
मति हरि पूछे कौन है मेरे जाति न नांउ ॥१०३०॥

निर्मल बूँद अकास की लीनी भूमि मिलाइ।
अनिक सियाने पच गये ना निरवानी जाइ ॥१०३१॥

नृपनारी क्यों निंदिये क्यों हरिचेरी कौ मान।
ओह माँगु सवारे बिषै कौ ओह सिमरै हरि नाम ॥१०३२॥

नैंन निहारै तुझको स्रवन सुनहु तुव नाउ।
नैन उचारहु तुव नाम जो चरन कमल रिद ठाउ ॥१०३३॥

परदेसी कै घाघरे चहु दिसि लागी आगि।
खिंथा जल कुड़ला भई तागे आँच न लागि ॥१०३४॥

परभाते तारे खिसहिं त्यों इहु खिसै सरीरु।
पै दुइ अक्खर ना खिसहिं त्यों गहि रह्यौ कबीरु ॥१०३५॥

पाटन ते ऊजरूं भला राम भगत जिह ठाइ।
राम सनेही बाहरा जमपुर मेरे भाइ ॥१०३६॥

पापी भगति न पावई हरि पूजा न सुहाइ।
माखी चंदन परहरै जहँ बिगध तहँ जाइ ॥१०३७॥

कबीर पारस चंदनै तिन है एक सुगंध।
तिहि मिलि तेउ ऊतम भए लोह काठ निरगंध ॥१०३८॥

पालि समुद सरवर भरा पी न सकै कोइ नीरु।
भाग बड़े ते पाइयो तू भरि भरि पीउ कबीर ॥१०३९॥

कबीर प्रीति इकस्यो किए आगँद बद्धा जाइ ।
भावै लंबे केस कर भावै घररि मुड़ाइ ॥१०४०॥

कबीर फल लागे फलनि पाकन लागै आंव ।
जाइ पहूँचै खसम कौ जौ बीचि न खाई काँव ॥१०४१॥

बाम्हन गुरु है जगत का भगतन का गुरु नाहिं ।
उरझि उरझिं कै पच मुआ चारहु बेदहु माहि ॥१०४२॥

कबीर बेड़ा जरजरा फूटे छेक हजार ।
हरूये हरूये तिरि गये डूबे जिनि सिर भार ॥१०४३॥

भली भई जौ भौ पर्या दिसा गई सब भूलि ।
ओरा गरि पानी भया जाइ मिल्यौ ढलि कूलि ॥१०४४॥

कबीर भली मधूकरी नाना बिधि को नाजु ।
दावा काहू को नहीं बड़ी देस बड़ राजु ॥१०४५॥

भाँग माछुली सुरापान जो जो प्रानी खाहि ।
तीरथ बरत नेम किये ते सबै रसातल जांहि ॥१०४६॥

भार पराई सिर धरै चलियो चाहै बाट ।
अपने भारहि ना डरै आगै औघट घाट ॥१०४७॥

कबीर मन निर्मल भया जैसा गंगा नीर ।
पाछै लागो हरि फिरहिं कहत कबीर कबीर ॥१०४८॥

कबीर मन पंखी भयो जहाँ उड़ि उड़ि दह दिसि जाइ ।
जो जैसी संगति मिलै सो तैसी फल खाइ ॥१०४९॥

कबीर मन मूद्धा नहीं केस मुड़ाये काइ ।
जो किछु किया सो मन किया मुंडामुंड अजाइ ॥१०५०॥

मया तजी तो क्या भया जौ मानु तज्यो नहीं जाइ ।
मान मुनी मुनिवर गले मानु सबै को खाइ ॥१०५१॥

कबीर महदी करि घालिया आपु पिसाइ पिसाइ ।
तैसेई बात न पूछियै कबहु न लाई पाइ ॥१०५२॥

माई मूढहू तिहि गुरू जाते भरम न जाइ ।
आप डुबे चहु बेद महि चेले दिये बहाइ ॥१०५३॥

माटी के हम पूतरे मानस राख्यो नाउ।
चारि दिवस के पाहुने बड़ बड़ रूधहि ठाउ ॥१०५४॥

मानस जनम दुर्लभ है होइ न बारै बारि।
जौ बन फल पाके भुइ गिरहिं बहुरि न लागै डारि ॥१०५५॥

कबीर माया डोलनी पवन झकोलनहारु।
संतहु माखन खाइया छाछि पियै संसारु ॥१०५६॥

कबीर माया डोलनी पवन बहै हिवधार।
जिन बिलोया तिन पाइया अवन बिलोवनहार ॥१०५७॥

कबीर माया चोरटी मुसि मुसि लावै हाटि।
एकु कबीरा ना मुसै जिन कीनी बारह बाटि ॥१०५८॥

मारी मरौ कुसंग की केले निकटि जु बेरि।
उह झूलै उह चीरिये साकत संगु न हेरि ॥१०५९॥

मारे बहुत पुकारिया पीर पुकारै और।
लागी चोट मरम्म की रह्यौ कबीरा ठौर ॥१०६०॥

मुकति दुबारा संकुरा राई दसएँ भाइ।
मन तौ मंगल होइ रह्यौ निकस्यो क्यौं कै आइ ॥१०६१॥

मुल्ला मुनारे क्या चढ़हि साँई न बहरा होइ।
जाँ कारन बाँग देहि दिल ही भीतरि जोइ ॥१०६२॥

मुहि मरने का चाउ है मरौं तौ हरि कै द्वार।
मत हरि पूछै को है परा हमारै बार ॥१०६३॥

कबीर मेरी जाति की सब कोइ हंसनेहारु।
बलिहारी इस जाति कौ जिह जपियो सिरजनहारु ॥१०६४॥

कबीर मेरी बुद्धि जसु न करै तिसकार।
जिन यह जमुआ सिरजिआ सु जपिया परदिगार ॥१०६५॥

कबीर मेरी सिमरनी रसना ऊपरि रामु।
आदि जगादि सगस भगत ताकौ सब बिश्राम ॥१०६६॥

जम का ठेगा बुरा है ओह नहिं सहिया जाइ।
एक जु साधु मोहि मिलो तिन लीया अंचल लाइ ॥१०६७॥

कबीर यह चेतनी मत सह सारहि जाइ।
पाछै भोग जु भोगवै तिनकी गुड़ लै खाइ ॥१०६८॥

रस को गाढ़ो चूसिये गुन को मरिये रोइ।
अवगुन धारै मानसै भलो न कहियो कोइ ॥१०६९॥

कबीर राम न चेतिये जरा पहूँच्यौ आइ।
लागी मंदर द्वारि ते अब क्या काद्यो जाइ ॥१०७०॥

कबीर राम न चेतियो फिरिया लालच माहि।
पाप करंता मरि गया औध पुजी खिन माहि ॥१०७१॥

कबीर राम न छोड़िये तन धन जाइ त जाउ।
चरन कमल चित बोधिया रामहि नाम समाउ ॥१०७२॥

कबीर राम न ध्याड़यो मोटी लागी खरि।
काया हाड़ी काठ की ना ओह चढ़ै बहोरि ॥१०७३॥

राम कहना महि भेंदु है तामहिं एकु बिचारु।
सोइ राम सबै कहहिं सोई कोतुकहारु ॥१०७४॥

कबीर राम मैं राम कहु कहिबे माहि बिबेक।
एक अनेकै मिलि गयां एक समाना एक ॥१०७५॥

रामरतन मुख कोथरी पारख आगै भोलि।
कोइ आइ मिलैगो गाहकी लेगी महँगे मोलि ॥१०७६॥

लागी प्रीति सुजान स्यों बरजै लोगु अजानु।
तास्यो टूटी क्यों बनै जाके जीय परानु ॥१०७७॥

बांसु बढ़ाई बूड़िया यों मत डुबहु कोइ।
चंदन कै निकटें बसे बांसु सुगंध न होइ ॥१०७८॥

कबीर बिकारहु चितवते झूठे करंते आस।
मनोरथ कोइ न पूरियो चाले ऊठि निरास ॥१०७९॥

बिरहु भुअंगम मन बसै मन्तु न मानै कोइ।
राम बियोगी ना जियै जियै तो बौरा होइ ॥१०८०॥

बैदु कहै हौं ही भला दारू मेरे बस्सि।
इह तौ बस्तु गोपाल की जब भावै ले खस्सि ॥१०८१॥

वैष्णव की कुकरि भली साकत की बुरी माइ ।
ओह सनहिं हर नाम जस उह पाप बिसाहन जाइ ॥१०८२॥

वैष्णव हुआ त क्या भया माला मेली चारि ।
बाहर कंचनवा रहा भीतरि भरी भंगारि ॥१०८३॥

कबीर संसा दूरि करु कागह हेरु बिहाउ ।
बावन अक्खर सोधि कै हरि चरनों चित लाउ ॥१०८४॥

संगति करियै साध की अंति करै निर्बाहु ।
साकत संगु न कीजिये जाते होइ बिनाहु ॥१०८५॥

कबीर संगत साध की दिन दिन दूना हेतु ।
साकत कारी कांबरी धोए होइ न सेतु ॥१०८६॥

संत की गैल न छांड़ियै मारगि लागा जाउ ।
पेखत ही गैल पुन्नीत होइ भेटत जपियै नाउ ॥१०८७॥

संतन की झुरिया भली भठी कुसत्ती गांउ ।
आगि लगै तिह धौलहरि जिह नाहीं हरि को नांउ ॥१०८८॥

संत मुये क्या रोइये जो अपने गृह जाय ।
रोवहु साकत बापुरो जो हाटै हाट बिकाय ॥१०८९॥

कबीर सति गुरु सुरमे बाह्या बान जु एकु।
लागत की भुइ गिरि पर्या परा कलेजे छेकु ॥१०९०॥

कबीर सब जग हौं फिर्यो मांदलु कंध चढ़ाइ ।
कोई काहू का नहीं सब देखी ठोक बजाइ ॥१०९१॥

कबीर सब तें हम बुरे हम तजि भलो सब कोइ ।
जिन ऐसा करि बूझिया मीतु हमारा सोइ ॥१०९२॥

कबीर समुंद्र न छाड़ियै जौ अति खारो होइ ।
पोखरि पोखरि ढूंढ़ते भली न कहियै कोइ ॥१०९३॥

कबीर सेवा की दुइ भले एक संतु इकु राम ।
राम जु दाता मुकति को संतु जपावै रामु ॥१०९४॥

सांचा सति गुरु मैं मिल्या सबद जु बाह्या एकु।
लागत ही भुइ मिलि गया पर्या कलेजे छेकु ॥१०९५॥

कबीर साकत ऐसा है जैसी लसन की खानि।
कोने बैठे खाइये परगट होइ निदान ॥१०९६॥

साकत संगु न कीजियै दुरहि जइये भागि।
बासन करा परसियै तउ कछु लागै दागु ॥१०९७॥

सांचा सतिगुरु क्या करै जो सिक्खा माही चूक।
अंधे एक न लागई ज्यों बासु बजाइयै फूँकि ॥१०९८॥

साधू की संगति रहौ जौ की भूसी खाउ।
होनहार सो होइहै साकत संगि न जाउ ॥१०९९॥

साधु को मिलने जाइये साधु न लीजै कोइ।
पाछे पाउं न दीजियो आगै होइ सो होइ ॥११००॥

साधू संग परापति लिखिया होइ लिलाट।
मुक्ति पदारथ पाइयै ठाकन अवघट घाट ॥११०१॥

सारी सिरजनहार की जाने नाहीं कोइ।
कै जानै आपन धनी दासु दीवानी होइ ॥११०२॥

सिखि साखा बहुतै किये केसी कियो न मीतु।
चले थे हरि मिलन को बीचै अटको चीतु ॥११०३॥

सपने हू बरड़ाइकै जिह मुख निकसै राम।
ताके पा की पानही मेरे तन को चाम ॥११०४॥

सुरग नरक ते मैं रह्यौ सति गुरु के परसादि।
चरन कमल की मौज महि रहौ अंति अरु आदि ॥११०५॥

कबीर सूख न एह जुग करहि जु बहुतैं मीत।
जो चित राखहि एक स्यों ते सुख पावहिं नीत ॥११०६॥

कबीर सूरज चांद कै उदय भई सब देह।
गुरु गोबिंद के बिन मिले पलटि भई सब खेह ॥११०७॥

कबीर सोई कुल भलो जा कुल हरि दासु।
जिह कुल दासु न ऊपजे सो कुल ढाकु पलासु ॥११०८॥

कबीर सोई मारिये जिहि मूये सुख होइ।
भलो भलो सब कोई कहै बुरो न मानै कोइ ॥११०९॥

कबीर सोई मुख धन्नि है जा मुख कहिये राम ।
देही किसकी बापुरी पवित्र होइगो ग्राम ॥१११०॥

हंस उड़यौ तनु गाड़िगो सोझाई सैनाह ।
अजहूं जीउ न छाड़ई रंकाई नैनाह ॥१११॥

हज काबे हौं जाइया आगे मिल्या खुदाइ ।
साई मुझस्यो लर पर्या तुझै किन फुरमाई गाइ ॥१११२॥

हरदी पीर तनु हरे चून चिन्ह न रहाइ ।
बलिहारी इहि प्रीति कौ जिह जाति बरन कुल जाइ ॥१११३॥

हरि को सिमरन छाड़िकै पाल्यो बहुत कुटुंब ।
धंधा करता रहि गया भाई रहा न बंधु ॥१११४॥

हरि को सिमरन छाड़िकै राति जगावन जाइ ।
सर्पनि होइहै औतरे जाये अपने खाइ ॥१११५॥

हरि को सिमरन छाड़िकै अहोई राखे नांरि ।
गदही होइ कै औतरै भारु सहै मन चारि ॥१११६॥

हरि को सिमरन जो करै सो सुखिया संसारि ।
इत उत कतहु न डोलई जस राखै सिरजनहारि ॥१११७॥

हाड़ जरे ज्यों लाकरी केस जरे ज्यों घासु ।
सब जग जरता देखिकै भयो कबीर उदासु ॥१११८॥

है गै बाहन सघन घन छत्रपती की नारि ।
तासु पटंतर ना पुजै हरि जन की पनहारि ॥१११९॥

है गै बाहन सघन घन लाख धजा फहराइ ।
या सुख तै भिक्या भली जौ हरि सिमरन दिन जाइ ॥११२०॥

जहाँ ज्ञान तहँ धर्म है जहाँ झूठ तहँ पाप ।
जहां लाभ तहँ काल है जहां खिमा तहँ आप ॥११२१॥

कबीरा तुही कबीरू तू तेरो नाउ कबीर ।
रात रतन तब पाइयै जो पहिले तजहिं सरीर ॥११२२॥

कबीरा धूर सकेल कै पुरिया बांधी देह ।
दिवस चारि को पेखना अंत खेह की खेह ॥११२३॥

कबीरा हमरा कोइ नहीं हम किसहू के नाहि ।
जिन यहु रचन रचाइया तितहीं माहिं समाहिं ॥११२४॥

कोइ लरका बेचई लरकी बेचै कोइ ।
साँझा करे कबीर स्यों हरि संग बनज करेइ ॥११२५॥

जहँ अनभै तहं भौ नहीं जहँ भै तहं हरि नाहिं ।
कह्यौ कबीर बिचारिकै संत सुनहु मन माँहि ॥११२६॥

जोरी किये जुलुम है कहता नाउ हलाल ।
दफतर लेखा माडिये तब होइगौ कौन हवाल ॥११२७॥

ढूंढ़त डोले अंध गति अरु चीनत नाहीं अंत ।
कहि नामा क्यों पाइयै बिन भगतई भगवंत ॥११२८॥

नीचे लोइन कर रहौ जे साजन घट मांहि ।
सब रस खेलो पीव सौ कियो लखावौ नाहिं ॥११२९॥

बूड़ा बंस कबीर का उपज्यो पूत कमाल ।
हरि का सिमरन छाड़िकै घर ले आया माल ॥११३०॥

मारग मोती बीथरे अंधा निकस्यो आइ ।
जोति बिना जगदीस की जगत उलंधे जाइ ॥११३१॥

राम पदारथ पाइ कै कबिरा गांठि न खोल ।
नहीं पहन नहीं पारखू नहीं गाहक नहीं मोल ॥११३२॥

सेख सबूरी बाहरा क्या हज काबै जाइ ।
जाका दिल साबत नहीं ताको कहां खुदाइ ॥११३३॥

सुनु सखी पिउ महि जिउ बसै जिउ महिबसै कि पिउ ।
जीव पीउ बूझौ नहीं घट महि जीउ कि पीउ ॥११३४॥

हरि है खांडू रे तुमहि बिखरी हाथों चूनी ज जाइ ।
कहि कबीर गुरु भली बुझाई चीटीं होइ के खाइ ॥११३५॥

गगन दमामा बाजिया पर्‌यो निसानै घाउ ।
खेत जु मार्‌यो सूरमा जब जूझन को दाउ ॥११३६॥

सूरा सो पहिचानिये जु लरै दीन के हेत ।
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहुँ न छाड़ै खेत ॥११३७॥